अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्षः 44, संयुक्तांकः 18-19, 1-31 मई 2021

महामारी

बराबर नहीं हर व्यथा की अभिव्यक्ति

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित
अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक
वर्ष : 44,संयुक्तांक : 18-19, 1-31 मई 2021

अध्यक्ष
चंदन पाल
संपादक
बिमल कुमार
सहसंपादक
प्रेम प्रकाश
09453219994
संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह **अरविन्द अंजुम**
प्रो. सोमनाथ रोडे **अशोक मोती**

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

एक प्रति	:	10 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC Code : UBIN0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. संपादकीय... 2
2. महामारी... 3
3. सरकार की नाकामी सिस्टम के मत्थे... 5
4. स्वास्थ्य आपातकाल के बीच न्यायपालिका का... 6
5. निकम्मे नहीं हैं; वे वही कर रहे हैं जो करना... 7
6. बराबर नहीं हर व्यथा की अभिव्यक्ति... 9
7. कोरोना की तीसरी लहर भी आयेगी, निपटने के... 10
8. कोविड योद्धा बनें सर्वोदय के साथी... 11
9. अपना और अपनों का ख्याल रखें... 11
10. श्रद्धांजलि... 12
11. रक्षा कवच बनना, जिन्दगी को होम करने का... 13
12. आयुर्वेदिक बनाम एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति... 15
13. हिमालय-सा व्यक्तित्व था उनका... 17
14. शेष नारायण सिंह : एक यायावर!... 18
15. गांधी गीतों के गायक : भवानी प्रसाद मिश्र... 19
16. हिन्दुत्व की परिभाषा... 22
17. भारतीय राजनीति का हालिया आख्यान... 23
18. नेहरू हर महीने भेजते रहे नेताजी की बेटी को... 26
19. बंटवारा... 27
20. वर्तमान राजनीति का एक आप्त-विश्लेषण... 29
21. दो विपरीत दिशाओं की ओर जाता हुआ... 30
22. नेहरू तो बहाना हैं, गांधी ही निशाना हैं... 31
23. ढाबों पर 'छोटू' बनकर यातना झेलने वाले... 32
24. भारत का भविष्य... 34
25. विरोध को कुचलने का हथियार बन रही है... 35
26. मिट्टी सत्याग्रह अभियान... 38
27. टुटुआपानी संकल्प... 39
28. कविताएं... 40

संपादकीय कोरोना काल में संस्थाओं का क्षरण

कोविड (कोरोना) महामारी के दो दौर भारत फेल हो चुका है और तीसरी लहर दस्तक दे रही है। पहली लहर में हमने बिना तैयारी के लॉकडाउन झेला। फलस्वरूप देश भर से मजदूरों का अपने गांव की ओर पैदल ही पलायन के दृश्यों ने हमारी असंवेदनशीलता प्रकट की। ऐसा लगा कि कोरोना से लड़ने की तैयारी में केवल मध्यवर्ग एवं उच्चवर्ग की परेशानियों को ही ध्यान में रखा गया। गरीब मजदूरों के लिए उचित परिवहन व्यवस्था का इंतजाम, सत्ता के नीति-निर्धारण की प्राथमिकता में था ही नहीं। इसी प्रकार उनके भोजन की व्यवस्था की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। केवल खोखले नारे थे तथा टी. वी. में दिखाने के लिए कुछ बड़े शहरों में भोजन वितरण के आयोजन थे। देश भर के 5-6 बड़े शहरों के बाहर कोई इंतजाम नहीं। इसी प्रकार अस्पतालों पर अत्यधिक दबाव तथा तैयारी की कमी आम थी। ये कोरोना के प्रथम दौर के दृश्य थे।

बिना इनसे सबक लिए प्रचारतंत्र द्वारा मोदी जी का गुणगान शुरू हो गया कि उन्होंने दुनिया में सबसे बेहतर तरीके से कोरोना महामारी पर नियंत्रण पा लिया। कोरोना की दूसरी लहर आते ही, तैयारी के सभी दावे खोखले साबित हुए। अस्पतालों में बेड की कमी, आक्सीजन की कमी, गंगा में बिना अंतिम क्रिया के शवों को बालू में दबा देने का सिलसिला। बच्चे अनाथ हो रहे थे।

इस बीच विरोधियों पर पुलिस द्वारा गैर कानूनी कार्यवाई। चुनावों के दौरान कोविड प्रोटोकाल की शीर्षस्थ नेताओं द्वारा धज्जियां उड़ाई गयीं। सत्ता समर्थकों द्वारा जब कभी व्यापक रूप से कोविड प्रोटोकाल का उल्लंघन हुआ, उन पर कोई कार्यवाई नहीं की गयी। उत्तर प्रदेश में पंचायत चुनावों के कारण तथा हरिद्वार में कुम्भ के कारण बहुत से लोग कोरोना ग्रसित हो, काल कलवित हो गये। देश भर में श्मशान घाट से प्राप्त मृतकों की संख्या एवं सरकार द्वारा बतायी गयी मृतकों की संख्या में भारी अंतर था।

इन सारी समस्याओं पर ध्यान देने के बजाय सरकार ने ऐसी महामारी के काल में तमाम दूरगामी निर्णय लिये। सरकार को पता था एवं सरकार ने ही ऐसी स्थिति का निर्माण किया था कि इस दौरान व्यापक लोकतांत्रिक ढंग से इन नीतियों पर चर्चा एवं बहस की संभावना नहीं है। शिक्षा नीति, श्रम नीति, कृषि नीति, सार्वजनिक उपक्रमों का विनिवेश, वित्तीय संस्थाओं में भारी फेरबदल और कारपोरेट घरानों को भारी छूट, इसके कुछ उदाहरण हैं। इस बात का स्पष्टीकरण आज तक नहीं आया कि जब इस महामारी के दौरान पूरी अर्थव्यवस्था में गिरावट आयी, सभी क्षेत्रों में आय घटी तो कुछ कारपोरेट घरानों की आय में अप्रत्याशित वृद्धि कैसे हुई। इतना ही नहीं, यह भी आरोप है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ विचारधारा के लोग सत्ता प्रतिष्ठान की सभी संस्थाओं में गहराई से अपनी पैठ बना चुके हैं, चाहे शैक्षणिक संस्थाएं हों, प्रशासनिक ढांचा हो या यहां तक कि पुलिस एवं इंटेलिजेंस विभाग।

कोविड महामारी का इस परीक्षण के लिए भी इस्तेमाल किया गया जा रहा है कि लोकतंत्र को किस हद तक संकुचित कर अंकुश में रखा जा सकता है तथा पुलिस राज को जनता किस सीमा तक बर्दाश्त कर सकती है। सरकार उस सीमा तक जायेगी। सरकार की असंवेदनशीलता के दो प्रमाण हैं—एक, किसान आंदोलन के प्रति रवैया तथा दूसरा सेंट्रल विस्टा प्रोजेक्ट तेजी से खतम करने की प्रतिबद्धता, लेकिन सार्वजनिक निगाहों से छुपा कर, क्योंकि कार्य की प्रगति की फोटो तक खींचने पर रोक लगा दी गयी है।

लेकिन सारा दोष अकेले मोदीजी पर मढ़ने की जरूरत नहीं है। वे स्वयं भारत की पतनशील राजनीतिक प्रक्रियाओं के गर्भ से निकलकर आये हैं। फर्क सिर्फ यह है कि उनके समर्थक लोकतंत्र, नागरिक स्वातंत्र्य, सेक्यूलरिज्म, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, सच्चे संघवाद आदि का मुखौटा उतार कर राजनीति कर रहे हैं। प्रशासन के सम्प्रदायीकरण तक को उचित ठहरा रहे हैं। हम एक निर्वाचित निरंकुशता की ओर बढ़ रहे हैं। इसमें मूल मुद्दे से भटका कर अस्मिता आधारित राजनीति (identity politics) को उसके चरम तक बढ़ाया जा रहा है। अहिंसक लोक आंदोलनों को खड़ा करने के अलावा आशा की कोई किरण नहीं है। महामारी को मुक्त बाजार की नीति को बढ़ाने के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है।

-बिमल कुमार

महामारी

❑ गांधी

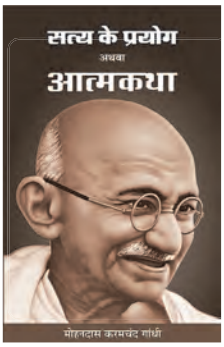

इस लोकेशन की मालिकी लेने के साथ ही म्युनिसिपैलिटी ने हिन्दुस्तानियों को वहां से खदेड़ा नहीं। उन्हें दूसरी अनुकूल जगह देने की बात तो थी ही। वह जगह म्युनिसिपैलिटी ने तय नहीं की थी। इससे हिन्दुस्तानी उसी गंदे लोकेशन में रह गये। दो फेरफार हुए। हिन्दुस्तानी अब मालिक न रहकर नगर-सुधार-विभाग के किरायेदार हो गये। इससे गंदगी और बढ़ गयी। पहले जब हिन्दुस्तानी मालिक माने जाते थे तब वे खुशी से न सही तो डर से ही कुछ-न-कुछ सफाई रखते थे। अब सुधार-विभाग को किसका डर? मकान में किरायेदार बढ़े और उसी के साथ गंदगी और अव्यवस्था बढ़ी।

यों यह दशा चल रही थी। भारतीयों के मन उत्तेजित थे। इतने में यकायक काला प्लेग फूट निकला। यह महामारी प्रणाघातक थी। यह फेफड़े का प्लेग था। उसकी गिलटी काले प्लेग से अधिक भयानक समझी जाती थी।

सौभाग्य से महामारी का कारण लोकेशन नहीं था। उसका कारण थी जोहान्सबर्ग के आसपास की सोने की खानों में की एक खान। वहां मुख्यतः हब्शी मजदूर थे। उनकी सफाई की जिम्मेदारी तो केवल गोरे मालिकों के सिर थी। इस खान के काम में कुछ हिन्दुस्तानी भी लगे हुए थे। उनमें से तेईस को यकायक छूत लगी और वे एक शाम को भयानक महामारी के शिकार होकर लोकेशन में अपने डेरे पर आये।

इस समय भाई मदनजीत 'इंडियन ओपीनियन' के ग्राहक बनाने और सालाना चंदा वसूल करने आये थे। वह लोकेशन में घूमते थे। उनमें भरपूर निर्भयता थी। इन बीमारों पर उनकी नजर पड़ी और उनका हृदय धधकने लगा। उन्होंने मुझे पेंसिल से लिखकर एक चिट भेजी। उसका आशय था :

''यहां यकायक काला प्लेग फूट पड़ा है। आपको फौरन आकर कुछ करना चाहिए। नहीं तो परिणाम भयंकर होगा। तुरंत आइए।''

मदनजीत ने एक खाली पड़े मकान पर निर्भयतापूर्वक कब्जा कर लिया और उसी में इन बीमारों को रखा। मैं अपनी साइकिल पर लोकेशन पहुंचा। वहां से टाउन क्लर्क को हाल भेजा और किस परिस्थिति में मकान पर कब्जा किया गया था, यह बता दिया।

डॉक्टर विलियम गाडफ्रे जोहान्सबर्ग में डाक्टरी करते थे। समाचार पाते ही वह दौड़े आये और बीमारों के डॉक्टर और नर्स दोनों बन गये। पर तेईस रोगियों को हम तीनों संभाल लें, यह मुमकिन न था।

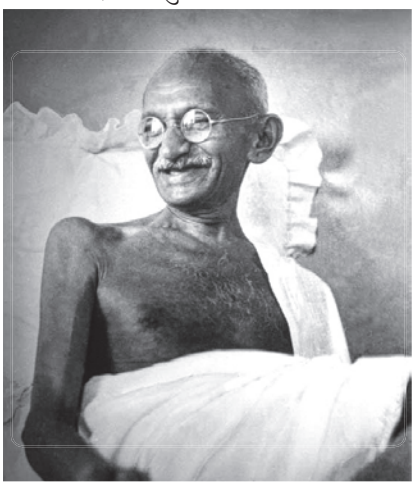

अनुभव के आधार पर मेरा यह विश्वास हो गया है कि नीयत अच्छी हो तो संकट के मुकाबले के लिए सेवक और साधन मिल ही जाते हैं। मेरे दफ्तर में कल्याणदास, माणिकलाल और दूसरे दो हिन्दुस्तानी थे। अंतिम दो के नाम इस समय मुझे याद नहीं है। कल्याणदास को उनके बाप ने मुझे सौंप दिया था। उनके जैसे परोपकारी और सिर्फ आज्ञापालन जानने वाले सेवक मुझे थोड़े ही मिले होंगे। कल्याणदास सौभाग्य से उस समय ब्रह्मचारी थे। अतः उन्हें चाहे जैसे जोखिम का काम सौंपते मुझे कभी संकोच नहीं होता था। दूसरे सज्जन माणिकलाल मुझे जोहान्सबर्ग में ही मिले थे। मेरा खयाल है कि वह भी कुंवारे थे। इन चारों को—इन्हें मुंशी कहिये या बेटा कहिये—मैंने होमने का निश्चय किया। कल्याणदास से तो पूछना ही क्या था। दूसरे पूछते ही तैयार हो गये। ''जहां आप वहां हम''—यह उनका संक्षिप्त और मधुर उत्तर था।

मि. रीच का परिवार बड़ा था। वह खुद तो कूदने को तैयार थे, पर मैंने उन्हें रोका। उन्हें इस जोखिम में डालने को मैं हरगिज तैयार न था। मेरी हिम्मत ही न होती थी, लेकिन उन्होंने बाहर का सारा काम उठा लिया।

शुश्रूषा की वह रात भयानक थी। मैं बहुत बीमारों की शुश्रूषा कर चुका था। पर प्लेग के मरीज की तीमारदारी करने का मौका मुझे कभी नहीं मिला था। डाक्टर गाडफे की हिम्मत ने हमें निडर बना दिया। रोगियों की सेवा अधिक नहीं करनी थी। उन्हें दवा देना, तसल्ली देना, पथ्य-पानी देना और उनका पाखाना वगैरह साफ करने के सिवा ज्यादा काम नहीं था।

चारों युवकों की जी-तोड़ मेहनत और निर्भयता देखकर मेरे हर्ष की सीमा न रही।

डाक्टर गाडफ्रे और मदनजीत की हिम्मत भी समझ में आ सकती थी। पर इन युवकों की? रात ज्यों-त्यों बीती। मुझे जहां तक याद है, उस रात को हमने एक भी रोगी को खोया नहीं। परंतु यह प्रसंग जितना ही करुणाजनक है, उतना ही मनोरंजक और मेरी दृष्टि में धार्मिक भी है।

इस प्रकार एकाएक मकान का ताला तोड़कर बीमारों की सेवा-शुश्रूषा करने के लिए टाउन क्लर्क ने हमारा उपकार माना और सच्चे दिल से कबूल किया, ''ऐसी हालत का एकाएक सामना और प्रबंध करने की सहूलियत हमारे पास नहीं। आपको जिस किसी प्रकार की सहायता की आवश्यकता हो, आप अवश्य कहियेगा; टाउन-कौंसिल अपने बस-भर जरूर आपकी सहायता करेगी।'' परंतु वहां की म्यूनिसिपैलिटी उचित प्रबंध करने के लिए सावधान हो चुकी थी और उसने

बीमारों का प्रबंध करने में अपनी तरफ से विलंब न होने दिया।

दूसरे दिन एक खाली गोदाम हमारे हवाले किया गया और कहा गया कि उसमें सब बीमार रखे जांय। उसे साफ करने की जिम्मेदारी म्युनिसिपैलिटी ने न ली। मकान बड़ा मैला और गंदा था। हम लोगों ने खुद भिड़कर उसे साफ किया। उदारचेता भारतीयों की सहायता से चारपाई इत्यादि मिल गयी ओर उस समय काम चलाने के लिए एक खासा अस्पताल बन गया। म्युनिसिपैलिटी ने एक नर्स—परिचारिका—भेजी और उसके साथ ब्रांडी की बोतल और बीमारों के लिए अन्य आवश्यक चीजें दीं। डॉक्टर गाडफे ज्यों के त्यों तैनात रहे।

नर्स को हम शायद ही कहीं रोगियों को छूने देते थे। उसे खुद तो छूने से परहेज न था, वह थी भी भली मानुस। किन्तु हमारी कोशिश यह रही कि जहां तक हो, खतरे में न पड़े। तजवीज यह हुई थी कि बीमारों को समय-समय पर ब्रांडी पिलायी जाय। हमसे भी नर्स कहती कि बीमारी से अपने को बचाने के लिए आप लोग भी थोड़ी-थोड़ी ब्रांडी पिया करो। वह खुद तो पीती ही थी। पर मेरा मन गवाही नहीं देता था कि बीमारों को भी ब्रांडी पिलायी जाय। तीन बीमार ऐसे थे जो बिना ब्रांडी के रहने को तैयार थे। डॉ. गाडफे की इजाजत से मैंने उन पर मिट्टी के प्रयोग किये। छाती में जहां-जहां दर्द होता था, तहां-तहां मैंने मिट्टी की पट्टी बंधवायीं। इनमें से दो बच गये और शेष सब चल बसे। बीस रोगी तो इस गोदाम में ही मर गये।

म्युनिसिपैलिटी की दूसरी तैयारियां चल रही थीं। जोहान्सबर्ग से सात मील पर छुतहे रोगियों का अस्पताल था। वहां खेमा खड़ा करके इन तीन रोगियों को ले गये। प्लेग के और रोगियों को भी वहां ले जाने का इंतजाम किया गया। हमने इस काम से छुट्टी पायी। थोड़े ही दिनों में हमें मालूम हुआ कि उक्त भली नर्स को प्लेग हो गया और उसकी मृत्यु हो गयी। पूर्वोक्त रोगियों का बचना और हमारा रोग से बचे रहना किस कारण से हुआ, यह कोई कह नहीं सकता। पर मिट्टी के उपचार पर मेरी श्रद्धा और औषध रूप में भी शराब के उपयोग में मेरी अश्रद्धा बढ़ गयी। मैं जानता हूं कि यह श्रद्धा और अश्रद्धा दोनों बेबुनियाद मानी जायेंगी। लेकिन मुझ पर उस वक्त पड़ी हुई छाप को, जो अब तक चलती आ रही है, मैं मिटा नहीं सकता और इसीलिए इस प्रसंग में उसका उल्लेख कर देना आवश्यक समझता हूं।

यह महामारी फूटने के बाद फौरन ही मैंने अखबारों में म्युनिसिपैलिटी के लोकेशन को अपने हाथ में लेने के बाद की बढ़ी हुई लापरवाही और महामारी के लिए उसकी जिम्मेदारी पर एक कड़ा पत्र लिखा था। उस पत्र ने मुझे मि. हेनरी पोलक से मिलाया और वह पत्र स्वर्गीय जोसेफ डोक से परिचय का एक साधन बन गया था।

पिछले प्रकरणों में बतला आया हूं कि मैं भोजन करने एक निरामिष भोजन-गृह में जाया करता था। वहां मेरा मि. अलबर्ट बेस्ट से परिचय हुआ। हम बराबर शाम को इस गृह में मिलते और खाकर साथ घूमने जाते। बेस्ट एक छोटे प्रेस में हिस्सेदार थे। उन्होंने अखबारों में महामारी के बारे में मेरा पत्र पढ़ा और मुझे भोजन के समय होटल में न पाकर वह घबराये।

मैंने और मेरे साथी सेवकों ने प्लेग के दिनों में खुराक घटा दी थी। बहुत दिनों से मेरा यह नियम हो गया था कि प्लेग—महामारी के प्रकोप के समय पेट में बोझा जितना कम रहे, उतना अच्छा। अतः मैंने शाम का खाना बंद कर दिया था और दोपहर को दूसरे खाने वालों को हर तरह के खतरे से दूर रखने के खयाल से मैं ऐसे वक्त जाकर खा आता था, जब कोई आया न होता था। भोजन गृह के मालिक से तो मेरा गहरा परिचय था। उसको मैंने बतला दिया था कि मैं प्लेग के मरीजों की तीमारदारी में लगा हूं, इसलिए दूसरों का स्पर्श कम से कम रखना चाहता हूं।

यों मुझे भोजन गृह में न पाकर दूसरे या तीसरे ही दिन सबेरे के समय, जब मैं बाहर निकलने की तैयारी कर ही रहा था, मि. वेस्ट ने पहुंचकर मेरे कमरे का दरवाजा खटखटाया। ज्योंही दरवाजा खोला, वेस्ट बोले—

''आपको भोजन गृह में न पाकर मैं तो घबराया कि कहीं आपको तो कुछ नहीं हो गया। यह सोचकर आया हूं कि इस वक्त तो आप मिल ही जायेंगे। मुझसे किसी मदद की जरूरत हो तो अवश्य कहियेगा। मैं रोगियों की सेवा-शुश्रूषा के लिए भी तैयार हूं। आप जानते ही हैं कि मुझपर अपना पेट भरने के सिवा और कोई जिम्मेदारी नहीं है।''

मैंने वेस्ट को धन्यवाद दिया। मुझे याद नहीं है कि मैंने सोचने में मिनट भी लगाया हो। मैंने कहा—''आपको मैं नर्स के रूप में तो नहीं लूंगा। बीमार न निकलें तो हमारा काम एक-दो दिन में ही खत्म हो जायेगा। पर एक काम जरूर है।''

''सो क्या?''

''आप डरबन जाकर 'इंडियन ओपीनियन' प्रेस का प्रबंध अपने हाथ में ले लेंगे? मदनजीत तो फिलहाल यहां काम में फंसे हुए हैं। वहां किसी का जाना जरूरी है। आप चले जायं तो मैं उधर की चिन्ता से बिलकुल छूट जाऊं।''

वेस्ट ने जवाब दिया—''मेरे पास अपना प्रेस है। यह तो आपको मालूम ही है। बहुत करके तो मैं जाने को तैयार हो जाऊंगा। अंतिम उत्तर आपको शाम को दूं तो ठीक होगा न? घूमने चल सकें तो बातें हो जायेंगी।

मुझे प्रसन्नता हुई। उसी दिन शाम को कुछ बातचीत हुई। वेस्ट को हर महीने दस पौंड वेतन और छापेखाने में बचत होने पर उसका एक हिस्सा देने की बात तय हो पायी। वेस्ट तनख्वाह के लिए जाने वाले आदमी नहीं थे। इसलिए उसका सवाल उनके सामने नहीं था। दूसरे ही दिन रात की डाकगाड़ी से वेस्ट अपना लहना मुझे सौंपकर डरबन को रवाना हो गये। तब से दक्षिण अफ्रीका छोड़ने तक वह मेरे सुख-दुख के साथी रहे। मैंने श्री वेस्ट को सदा, विलायत के एक परगने के लाउथ नामक गांव के एक कृषक कुटुंब में जन्मे हुए, स्कूल की साधारण शिक्षा पाये हुए, अपने श्रम से अनुभव की पाठशाला में शिक्षित और गढ़े हुए, संयमी, शुद्ध ईश्वर-भीरु, हिम्मत वाले और परोपकारी अंग्रेज के रूप में जाना है।

-'आत्मकथा' से

सरकार की नाकामी सिस्टम के मत्थे

❑ मनोज कुमार झा

सिस्टम जी, मैं बड़ी बेकरारी से आपका पता ढूंढ़ रहा था, जिससे कि अपने विचारों को आपके सम्मुख प्रस्तुत कर सकूं, लेकिन मुझे कोई भी आपका सही पता नहीं बता सका। इसलिए मेरे पास इस लेख को लिखने के अलावा कोई चारा नहीं था, जिसे पढ़कर आप अपने बारे में सच जान सकें।

काफी दिन से यह बात सुनी जा रही है कि 'यह सिस्टम फेल' हो गया है; कि 'सिस्टम नष्ट हो गया है', और यह सिस्टम ही है, जिसके कारण लाखों भारतीय अभूतपूर्व तकलीफ, दुख-दर्द और मुश्किलों से गुजर रहे हैं। हम देखते आ रहे हैं कि किस प्रकार राज्यों में कोविड संक्रमित मरीजों का डाटा मैनेज किया जा रहा है। हम 'सिस्टम' के द्वारा बताई गई मृतकों की संख्या और श्मशान में जलती हुई लाशों की संख्या के भारी अंतर को भी असहाय होकर देख रहे हैं। हमने नदियों में बहती वे लाशें भी देखीं, जिन्हें 'सिस्टम' ने निर्ममता से नकार दिया। भारत के संविधान में अनुच्छेद 21, जो हमें जीवन का अधिकार देता है, वह इन दिनों धूल चाट रहा है। यही हश्र दूसरे संवैधानिक मूल्यों का भी होता नजर आता है। कोविड महामारी की दूसरी लहर के दौरान 'तथाकथित सिस्टम' में सबसे ताकतवर लोगों की हेकड़ी यह बताती है कि सरकार के महत्वपूर्ण संस्थानों को अब किसी म्यूजियम में रखी बेजान वस्तुओं में तब्दील कर दिया गया है।

उपरोक्त आख्यान इसी तथाकथित 'सिस्टम' की उपज है, जिसके तहत सत्ता के सबसे ऊंचे पाए पर बैठे लोग अपने को किसी भी अपराध बोध से मुक्त कर लेते हैं। इनसे किसी भी प्रकार के पश्चाताप की उम्मीद करना असम्भव है।

वे लोग जो अस्पतालों में एक–एक बेड, आक्सीजन सिलेंडर और जीवन रक्षक दवाओं के लिए इधर से उधर भाग रहे हैं, उन्हें ये सब चीजें आसानी से नहीं मिल पा रही हैं। वे अपने लोगों को लाचारी से मरते हुए देख रहे हैं। ये सिलसिला हफ्तों से चल रहा है। उन्हें मालूम है कि 'इस सिस्टम' के पीछे असली चेहरे कौन से हैं। लेकिन वे बहुत ही साधारण और कमजोर लोग हैं, जो ताकतवरों को किसी तरह से न दोषी ठहरा सकते हैं, न उनका नाम ले सकते हैं, न उन्हें शर्मिंदा कर सकते हैं।

हैरोल्ड लास्की ने कहा था- 'सभ्य होने का अर्थ है कि हम अपने लोगों को अवांछित पीड़ा और दुःख न सौंपें। बिना सोचे समझे जो सत्ता के हुकुम को जस का तस स्वीकार कर लेते हैं, उन्हें खुद को सभ्य कहने का कोई अधिकार नहीं है'। इस आदर्श विचार के बावजूद हमारे आज के 'इस सिस्टम' के पीछे छिपे चेहरों ने भारत के सभ्यतामूलक मूल्यों को नष्ट कर दिया है।

हमारा संविधान सिखाता है कि सिस्टम और सरकारों को पंक्ति के आखिरी व्यक्ति के लाभ के लिए काम करना चाहिए। इसे करने के लिए संविधान ने हमें सही समतावादी दृष्टि और रास्ते भी सुझाए हैं। अगर सिस्टम सही तरीके से काम न कर पाए, तो उसे नियंत्रण में रखने के अनेक उपाय भी बताए गए हैं। मेरी पीढ़ी ऐसे विश्वासों के साथ बड़ी हुई है, जहां यह हमेशा बताया गया है कि यह सिस्टम इतना मजबूत है कि किसी भी संकट को झेल सकता है। वास्तव में एक अच्छा सिस्टम तो वही होता है, जो सबको जनहित की योजनाएं, लोगों की सुरक्षा, उनकी खुशहाली और सम्मान हमेशा दे सके। लेकिन जो सिस्टम लोगों की भलाई करने के लिए बना था, अगर उनके खिलाफ काम करने लगता है, तो 'वह सिस्टम' नाकारा और बेकार हो जाता है। अगर हमें यह बताया जा रहा है कि यह सिस्टम फेल हो चुका है, तो इसका यही अर्थ है कि एक रहस्य को सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया जा रहा है।

यह एक ऐसा सच है, जो पिछले छह-सात साल से हमारे सामने है, संविधान की आत्मा का उपहास उड़ाया जा रहा है। उसकी अवमानना की जा रही है। हमने इस सत्ता का अति केंद्रीयकरण न केवल संघीय स्तर पर, बल्कि कार्यकारिणी के अंदर भी देखा है। हमने जनतांत्रिक प्रक्रिया का जबर्दस्त हनन होते हुए भी देखा है। हमने ये भी देखा है कि कैसे स्वतंत्र संस्थानों ने अपनी-अपनी जिम्मेदारियों और कर्तव्यों से मुंह मोड़ लिया है या फिर उन्हें 'इसी सिस्टम' की एजेंसियों का इस्तेमाल करके खामोश कर दिया गया है। अब अभिव्यक्ति की आजादी और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की कोई गारंटी नहीं रह गई है। इस कठिन समय की सबसे दुःख भरी टिप्पणी यह है कि राहत कार्यों का भी अपराधीकरण हो चुका है। इस महामारी की हाहाकार मचाती दूसरी लहर के बीच जब विपक्ष और सिविल सोसाइटीज सही तरीके से काम करने की मांग करती है, तो 'सिस्टम' के पीछे के यही चेहरे उनसे डांटते हुए कहते हैं कि राजनीति मत करो।

वे लोग जो 'इस सिस्टम' का हिस्सा हैं, वे ये भूल चुके हैं कि राजनीति सिर्फ चुनाव लड़ने और जीतने का नाम नहीं है, बल्कि तीखे सवाल पूछने का भी नाम है। अपनी सहूलियत के हिसाब से याद रखना या भूल जाना इसलिए किया जाता है, ताकि 'इस सिस्टम' के असल चेहरे एवं काल्पनिक चेहरों के बीच सत्य और असत्य का किसी को पता न चले। इस तरह का वाकचातुर्य सच को ज्यादा देर तक नहीं छिपा सकता। एक रोते हुए देश को इस समय हुक्म दिया जा रहा है कि कैसे पाजिटिव रहा जाए। अगर ये 'सिस्टम' इतना ही लाइलाज और सड़ा-गला था, तो अच्छे दिन के वायदे क्यों किए गए? गंगा नदी की तेज धारा में बहती हुई लाशें अपनी–अपनी कहानियां खुद कह रही हैं, ये दृश्य भुलाए नहीं जा सकते। चाहे जितनी तेज धार हो, ये दृश्य आखों से ओझल नहीं किए जा सकते।

मुख्यधारा मीडिया के घराने बेशर्मी से इस सिस्टम का बचाव करने में लगे हुए हैं, उन्हें याद रखना चाहिए कि इतिहास इन बातों की बेहद पारदर्शिता और निर्ममता के साथ समीक्षा करेगा और इनकी भूमिका का मूल्यांकन करेगा। इस मीडिया ने 'सिस्टम' की असफलता के विमर्श को इतना बढ़ा-चढ़ाकर दिखाया है कि जो लोगों की जान और रोजगार के जाने के लिए जिम्मेदार हैं, उन्हें बचने का रास्ता मिल गया है।

सरकार की विफलताओं को पहचानने, सामने लाने एवं उनकी जवाबदेही तय करने के बजाय, मीडिया इसी सिस्टम के पीछे के चेहरों के आदेशों को सुनते हुए लोगों से 'पाजिटिविटी' की गुहार लगा रहा है। इस चौथे स्तम्भ ने लोकतंत्र का दम ऐसे समय पर घोंटा है, जब सारा देश अपने परिजनों को बचाने और आक्सीजन पाने के लिए संघर्ष कर रहा है।

यह कहना न कोई काल्पनिक बात है, न ही कोई आकाशवाणी है कि 'यह सिस्टम' पूर्ण रूप से फेल हो चुका है। 'इस सिस्टम' को इस घमंड में नहीं रहना चाहिए कि लोग इस पर अंधश्रद्धा रखते हैं। यह ऐसे लोगों से बना हुआ है, जिनके पास अपने कर्तव्यों को निभाने की क्षमता होती है। लेकिन यही लोग, लोगों के प्रति 'इस सिस्टम' द्वारा सौंपे गए अपने दायित्वों को निभाने में पूरी तरह से असफल साबित हुए हैं। **-इंडियन एक्सप्रेस**

स्वास्थ्य आपातकाल के बीच न्यायपालिका का अवकाश कितना न्यायोचित?

❑ श्रवण गर्ग

जिस समय देश के करोड़ों-करोड़ नागरिकों के लिए एक-एक पल और एक-एक साँस भारी पड़ रही है, सरकारें महीने-डेढ़ महीने थोड़ी राहत की नींद ले सकती हैं। यह भी मान सकते हैं कि जनता चाहे कृत्रिम साँसों के लिए संघर्ष में लगी हो, देश के नियंताओं को कम से कम किसी एक कोने से तो ताज़ा हवा नसीब हो गई है। कोरोना चिकित्सा के क्षेत्र में चीजों को तुरंत प्रभाव से दुरुस्त करने की हिदायतें देकर न्यायपालिका एक महीने से अधिक समय के लिए ग्रीष्मावकाश पर चली गई है। (सुप्रीम कोर्ट में 10 मई से 27 जून तक अवकाश रहेगा। इसी प्रकार उच्च न्यायालयों में भी कम से कम एक माह के लिए छुट्टी रहेगी)

अंग्रेजों के जमाने में वर्ष 1865 से लम्बे अवकाशों की उक्त सुविधाएँ माननीय न्यायाधीशों को तत्कालीन परिस्थितियों में प्रदान की गयी थीं। इनका लाभ आज़ादी के बाद भी आज तक उन्हें परम्परा के आधार पर प्राप्त है। यह अवकाश इस समय ज्यादा चर्चा में इसलिए है कि अभूतपूर्व संकट की घड़ी में अदालतें ही नागरिक-हितों की रक्षा के काम में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। देश के कई उच्च न्यायालय तो अपनी न्यायिक सक्रियता को लेकर आरोप भी बर्दाश्त कर रहे हैं कि वे अपनी समानांतर सरकारें चला रहे हैं। पुराने आक्षेप और बहस अपनी जगह क़ायम हैं कि न्यायपालिका द्वारा कार्यपालिका और विधायिका के अधिकार क्षेत्रों में ग़ैर-ज़रूरी दखल दिया जा रहा है।

देश इस समय असाधारण परिस्थितियों से गुज़र रहा है। नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करने के मामले में राजनीतिक नेतृत्व पूरी तरह से अक्षम साबित हो चुका है। प्रशासनिक व्यवस्थाएँ भी नाकाफ़ी सिद्ध हो रही हैं और रोजाना सैकड़ों लोगों की जानें जा रही हैं। दुनिया के प्रतिष्ठित मेडिकल जर्नल 'लांसेट' ने अगस्त महीने तक भारत में कोई दस लाख लोगों की मौत होने की आंशका जताई है। 'लांसेट' ने अपने सम्पादकीय में लिखा है कि अगर ऐसा हो जाता है तो इस स्व-आमंत्रित तबाही के लिए कोई और नहीं, बल्कि मोदी सरकार ही जिम्मेदार होगी। हम केवल ईश्वर से प्रार्थना कर सकते हैं कि 'लांसेट' द्वारा जताई जा रही आशंका पूरी तरह से ग़लत साबित हो। पर 'अगर सच हो गई तो' की पीड़ा के साथ ही तैयारियाँ भी करनी पड़ेंगी और डरते-डरते समय भी बिताना होगा।

आज देश का हरेक आदमी लाम पर है। हालांकि युद्ध इस समय सीमाओं पर नहीं, बल्कि देश के भीतर ही चल रहा है और मदद सीमा पार से भी मिल रही है। नागरिकों की जानें नागरिक ही हर तरह से सहायता करके बचा रहे हैं। यह ऐसा दौर है, जिसमें नागरिकों के पास अपनी पीड़ा व्यक्त करने के लिए केवल अदालतों की सीढ़ियाँ ही बची हैं और यह भी उतना ही सच है कि सरकारें इस समय चिताओं की आग से कम, अदालती आक्रोश से ज्यादा झुलस रही हैं। उच्च न्यायालयों के हाल के दिनों के कुछ निर्णयों और टिप्पणियों से सरकारों की भूमिका से निराश हो रहे नागरिकों को काफ़ी सम्बल मिला है और व्यवस्थाएँ कुछ हद तक सुधरी भी हैं।

चिंता का मुद्दा यहाँ यह है कि स्वास्थ्य और चिकित्सा के क्षेत्र में उपजी मौजूदा आपातकालीन परिस्थितियों में जब देश का प्रत्येक नागरिक साँसों की लड़ाई लड़ रहा है, तब क्या न्यायपालिका को एक दिन के लिए भी अवकाश पर जाना चाहिए? न्यायपालिका के इस परम्परा-निर्वाह से सरकारों को निश्चित तौर पर कोई आपत्ति नहीं हो सकती और न ही उनकी ओर से उक्त कदम के विपरीत किसी निवेदन की ही अपेक्षा की जा सकती है।

मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के एक वरिष्ठ अधिवक्ता बी एल पावेचा ने पिछले दिनों सुप्रीम कोर्ट और मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीशों को पत्र लिखकर निवेदन किया था कि महामारी के इस कठिन समय में न्यायपालिका को इस वर्ष तो अपना अवकाश स्थगित कर देना चाहिए। पावेचा ने उल्लेख किया कि न्यायपालिका का अवकाश पर जाना एक औपनिवेशिक विलासिता है। देश की पराधीनता के दौर में जब उच्च न्यायालयों की स्थापना हुई थी, तब अंग्रेज जजों के लिए चालीस से पचास डिग्री गर्मी में काम करना कठिन होता था। उस समय न तो बिजली होती थी और न ही पंखे। उस परिस्थिति में अंग्रेज जज स्वदेश चले जाते थे। आज वैसी कोई कठिनाइयाँ नहीं हैं। अदालतों में प्रकरणों के अंबार लगे हुए हैं। नए प्रकरणों को स्वीकार नहीं किया जाए, तब भी लम्बित प्रकरणों को ही निपटाने में कोई पच्चीस से तीस साल लग जाएँगे।

पावेचा ने अपने पत्र में कहा कि अदालती अवकाश के दौरान दो अथवा तीन न्यायाधीशों की उपस्थिति में सप्ताह में केवल दो दिन ज़मानतों आदि के आवेदनों सहित अति महत्वपूर्ण प्रकरणों की सुनवाई की जाती है, जो वर्तमान की असाधारण परिस्थितियों में अपर्याप्त है। न्यायपालिका का लम्बे अवकाश पर जाना न्यायसंगत तो कतई नहीं होगा, बल्कि इससे नागरिकों में संदेश जाएगा कि इस दुःख की घड़ी में उसे प्रजातंत्र के उस महत्वपूर्ण स्तम्भ की ओर से जरूरी सहारा नहीं मिल रहा है, जो उसकी आशा की अंतिम किरण है।

दुख की आपातकालीन घड़ी में न्यायपालिका के अवकाश को लेकर व्यक्त की जा रही चिंता का इसलिए सम्मान किया जाना चाहिए कि इस समय समूचा देश चिकित्सा सेवा की गिरफ्त में है। लोग अस्पतालों में ही नहीं, घरों में भी बंद हैं। नागरिकों को इस क़ैद से रिहाई के लिए चौबीसों घंटे अदालतों की निगरानी चाहिए। सुप्रीम कोर्ट द्वारा गठित टास्क फ़ोर्स की अपनी सीमाएँ हैं। वह अदालतों की तरह सरकारों में ख़ौफ़ नहीं पैदा कर सकता। इस समय तो निरंकुश हो चुकी राजनीतिक व्यवस्था से उसकी जवाबदेही के लिए लगातार पूछताछ किए जाने की ज़रूरत है और यह काम केवल न्यायपालिका ही कर सकती है। न्यायपालिका के लिए भी यह सबसे महत्वपूर्ण क्षण और अवसर है। ऐसे कठिन समय में न्यायाधीशों का लम्बे समय के लिए ग्रीष्मकालीन अवकाश पर जाना संवेदनशून्यता का संदेश देता है। ❑

निकम्मे नहीं हैं; वे वही कर रहे हैं जो करना चाहते हैं

❑ उपाध्याय अमलेन्दु

शीर्ष पर, खूब सारी ऊंचाई पर – भले ही **वह खुद की असफ**लताओं के कचरे और उसके चलते हुई लाखों जिंदगियों की टाली जा सकने वाली मौतों से इकट्ठी हुई लाशों के हिमालयी ढेर की ऊंचाई ही क्यों न हो–पहुँच जाने के बाद दिमाग सनक जाता है, विवेक लुप्त हो जाता है और आत्ममुग्धता ऐसा सनाका खींचने लगती है कि व्यक्ति 'आसमाँ पै है खुदा और जमीं पै हम' की परमगति से भी परे ऐसी अवस्था में पहुँच जाता है कि सारी सीमा रेखाएं भूल जाता है। हठधर्मिता इतनी चरम पर जा पहुँचती है कि हर सलाह पर जीभ चिढ़ाने, हर परामर्श को अंगूठा दिखाने के कारनामे दिखाने लगता है। तनिक सी शिकायत पर कपड़े फाड़ने और लट्ठ भांजने लगता है। मोदी की अगुआई वाली केन्द्र सरकार इन आचरणों में महारत हासिल किये हुए है। एक से ज्यादा हाईकोर्ट और खुद सुप्रीम कोर्ट ने एक से अधिक बार कहा कि 'ऑक्सीजन की कमी और जरूरी दवाएं न मिल पाने के चलते हुई मौतें सामान्य मृत्यु नहीं हैं, हत्याएं हैं।'

एक दो सुनवाइयों में तो इन्हें नरसंहार तक कह दिया गया। इन अदालतों ने अलग-अलग आदेशों में अलग अलग प्रदेशों को कितनी कितनी ऑक्सीजन कितने समय में दे दी जानी चाहिए, इसके आदेश भी दिए। मगर दीदादिलेरी इस हद तक है कि उन पर अमल नहीं किया गया। आखिर में खुद सुप्रीम कोर्ट ने स्वतः संज्ञान लिया और महामारी को रोक पाने में सरकार की पूर्ण विफलता, जीवन रक्षक दवाओं की कमी और वैक्सीन की कीमतों के सवाल पर सुनवाई शुरू करते हुए दो काम किये। पहला सरकार को नोटिस जारी करना, दूसरा 12 सदस्यीय टास्क फ़ोर्स गठित कर ऑक्सीजन सहित सभी आपूर्तियों के मामले की निगरानी स्वयं अपने हाथ में लेना।

ऐसा करके सुप्रीम कोर्ट ने हाल के कुछ वर्षों में धरातल से भी नीचे आ गयी अपनी साख को थोड़ा ऊपर लाने की कोशिश के साथ अपने होने का भी अहसास दिलाया। मगर सुप्रीम कोर्ट के नोटिस के जवाब में मोदी सरकार की तरफ से दाखिल 218 पन्नों के शपथपत्र ने देश की इस सर्वोच्च अदालत को भी उसकी हैसियत बताने की जुर्रत की।

केंद्र सरकार के एफिडेविट में सुप्रीम कोर्ट से कहा गया कि वह सरकार की बुद्धिमत्ता पर भरोसा रखे।' मतलब यह कि उसके किये या न किये गए काम में दखलंदाजी न करे। यह सिर्फ चोरी के बाद की जाने वाली सीनाजोरी ही नहीं है, खुद को हर तरह की समीक्षा और आलोचनाओं से परे, अपौरुषेय और अनिंद्य मानने की घोषणा भी है। यह विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के जोड़ पर टिके भारत के संविधान की आत्मा पर ही हमला है।

इस एफिडेविट में सरकार ने और भी कई ऐसी बातें की हैं, जो किसी भी सम्प्रभु देश की सरकार, कम से कम लिखा पढ़ी में तो कभी नहीं कहती। जैसे सुप्रीम कोर्ट ने स्वास्थ्य को भारत के नागरिकों का बुनियादी अधिकार बताने वाली धारा 21 का उल्लेख करते हुए सरकार से पूछा था कि वह ऐसे ही आफत के समय के लिए बनाई गयी पेटेंट ऐक्ट की धारा का इस्तेमाल कर वैक्सीन और अन्य जीवन रक्षक दवाओं का विराट पैमाने पर उत्पादन क्यों नहीं कर रही है। सरकार ने इसके जवाब में साफ़ मना करते हुए दावा किया है कि 'ऐसा करने से गैट और दोहा और न जाने कहाँ कहाँ बनी समझदारी का उल्लंघन हो जाएगा।' मतलब ये कि लाखों लोग मरते हैं तो मरते रहें, करोड़ों लोगों की मौत की आशंका है तो बनी रहे; विदेशी दवा और वैक्सीन कंपनियों के मुनाफे और इजारेदारी पर कोई आंच नहीं आनी चाहिए।

सीरम इंस्टिट्यूट और बायोटेक जैसी निजी वैक्सीन कंपनियों को सरकार की तरफ से दी गयी विशाल धनराशि को अग्रिम भुगतान बताकर ढांपने की कोशिश की गयी, मगर यह नहीं बताया गया कि ये कंपनियां रोज केवल 25 लाख वैक्सीन ही उत्पादित कर रही हैं। इस हिसाब से भारत की 135 करोड़ आबादी को टीका कब तक मिलेगा?

इतना ही नहीं, ठीक अपनी नाक के नीचे हो रही मौतों की सैकड़ों खबरों के बावजूद सरकार के सॉलिसिटर जनरल दावा करते हैं कि 'ऑक्सीजन की कोई कमी नहीं है; कि ऑक्सीजन की कमी की वजह से मौतें नहीं हो रही हैं।'

गौरतलब है कि यही सॉलिसिटर जनरल 27 अप्रैल को इसी सुप्रीम कोर्ट को दिए एफिडेविट में शपथपूर्वक कह चुके हैं कि 'खुद प्रधानमंत्री और गृहमंत्री ऑक्सीजन सहित कोविड से मुकाबले की अगुआई और निगरानी कर रहे हैं।'

अब जब सारी कमान ब्रह्मा और उनके अमात्य के हाथों में है तो भला किसी की भी आपत्ति या संदेह करने की हिम्मत कैसे हो सकती है! इसे किंकर्तव्यविमूढ़ता नहीं कहा जा सकता। यह जनता को मूढ़ – मूर्ख – बनाया जाना है।

इधर गंगा से लेकर यमुना तक नदियों में सैकड़ों लाशें बही चली जा रही हैं, उधर सरकार कभी मरने वालों की संख्या छुपाने की तो कभी आंकड़ों को अपनी सुविधा से जब ठीक लगे तो संख्या में और जब संख्या असुविधाजनक हो जाए तो प्रतिशत में जारी करने की चतुराई दिखा रही है। प्याज, लहसुन न खाने वाली वित्तमन्त्री तो उनसे भी पचास कदम आगे निकल गयीं, जब उन्होंने एक के बाद एक 16-18 ट्वीट करके देश-दुनिया को चौंका दिया कि 'ऑक्सीजन उपकरणों और दवाइयों पर लगने वाला 12% जीएसटी तथा वैक्सीन पर लगाया 5% जीएसटी अगर सरकार

हटा लेगी तो ये चीजें और ज्यादा महंगी हो जायेंगी।' हर पैमाने से यह एक अनोखा गणित और नितांत मौलिक अर्थशास्त्र है। इसे वित्तमन्त्री के नाम से पेटेंट करा लिया जाना चाहिए। नोबल नहीं तो इग्नोबल – वह पुरस्कार जो बेतुकी खोजों और बेहूदगियों के लिए दिया जा सकता है – मिलना तो पक्का है ही।

भारत की महामारी पूरी दुनिया की चिंता बन गयी है। सब अपनी ताकत और हैसियत के मुताबिक़ मदद और सहयोग में जुटे हैं। यह दोहराने की कोई आवश्यकता नहीं है कि इस महामारी को बुलाने वाले कौन है। मगर यह कहना गलत होगा कि यह सरकार निकम्मी है, कि यह कुछ भी नहीं कर रही है, कि ये नाकारा लोग हैं और कुछ कर ही नहीं सकते। ऐसा कतई नहीं है। चुनावी सभाओं से निबटते ही पहली कैबिनेट मीटिंग में ही बजाय आपदा प्रबंधन पर कोई योजना बनाने के, आईडीबीआई बैंक को निबटाने का फैसला लेकर मोदी सरकार ने साबित कर दिया है कि वे जो करना चाहते हैं, उसे सारा जोखिम उठाकर भी कर सकते हैं।

असल बात यह है कि वे जो किया जाना चाहिए, वह करना ही नहीं चाहते हैं। भारत में गद्दीनशीन आरएसएस की अगुआई वाले कारपोरेटी हिंदुत्व का पूँजीवाद 18वीं और 19वीं सदी का पूँजीवाद है, जो हजार-बारह सौ साल पुरानी मनुस्मृति की संगति में है। जिसके हिसाब से सिर्फ समर्थ को ही जीवित रहने का अधिकार है, जिसके मुताबिक़ देश की प्रगति का मतलब है पूंजीपतियों का उद्धार – उनकी सम्पत्तियों में तेजी से उछाल। जिनका मानना है कि महामारी और आपदाएं दरअसल कमाई की अपूर्व सम्भावनाएं हैं। ठीक यही बात बिना किसी लोकलाज के प्रधानमंत्री मोदी 'आपदा में अवसर' के रूप में सूत्रबद्ध भी कर चुके हैं। अम्बानी की 90 करोड़ और अडानी की 112 करोड़ रूपये प्रति घंटा कमाई का सूत्र यही है। नकली इंजेक्शन्स और दवाइयों की कालाबाजारी में पकड़े जा रहे लोगों में से ज्यादातर की इस 'राष्ट्रवादी' संगठन से संबद्धता इसी का एक अन्य आयाम है।

ऑक्सीजन, दवाओं और वैक्सीन के लिए खाली खजाने का रोना रोते-रोते बीसियों हजार करोड़ रुपयों के सेन्ट्रल विस्टा और हिटलर जैसे बंकरों से युक्त विराट मोदी महल बनाने की समझदारी का आधार भी यही है। इस समझदारी के गुणसूत्र का दूसरा रूप था कुम्भ में डुबकी लगाकर कोरोना से मुक्ति पाना, अब इसके अगले चरण में उत्तराखण्ड में ऋषिकेश की एम्स (ऑल इंडिया इंस्टिट्यूट ऑफ़ मेडिकल साइंसेज) में भारत सरकार के सहयोग से गायत्री मन्त्र का उच्चारण कर कोविड बाधा से मुक्ति पर शोध किया जा रहा है तो राजस्थान में आरएसएस हर गली मोहल्ले में हनुमान चालीसा का पाठ करके कोरोना भगाने में जुटा है।

ऐसे ही और जुगाड़ जनता के बीच अभियान चलाकर 'अनंत सकरात्मकता' फैलाने के मकसद से प्लान किये जा रहे हैं। अब इसके लिए भाषणवीरों के भाषणों के असर पर ज्यादा भरोसा नहीं बचा, इसलिए सऊदी अरब से दान में आये ऑक्सीजन टैंकर्स पर उनके स्टिकर्स के ऊपर रिलायंस के स्टिकर्स लगाए जा रहे हैं। भोपाल में ठीक हो चुके मरीजों को तीन दिन तक अस्पताल में और रोककर एक साथ डिस्चार्ज करके उनके साथ फोटो खिंचवाकर कोरोना की निर्णायक पराजय का एक और एलान करने की योजना बनाई जा रही थी, जिसे भांडा फूट जाने पर बाद में टाल दिया गया। खाली टैंकर्स को ऑक्सीजन एक्सप्रेस बताकर इधर उधर घुमाकर उनकी शोभायात्रा निकालने की भी तैयारी है।

ताज्जुब नहीं होगा यदि यह प्लान मई और जून के महीनों को मोक्ष प्राप्ति के सबसे मांगलिक महीनों के रूप में करार देकर मरने वालों के सीधे स्वर्ग पहुँचने की ज्योतिषीय घोषणाओं तक पहुँच जाए। कुल जमा ये कि ये निकम्मे नहीं हैं; सबके सब लाम पर डटे हैं, जो करना चाहते हैं, उस काम में जुटे हैं। ऐसे में नरसंहार बनी महामारी से खुद की और देश की जान बचाने का रास्ता सिर्फ एक है – सावधान और सजग रहना और मशाल जलाना। अंधविश्वास और कट्टरता की काली सुरंग के अंधियारे को चीरने और मौतों में मुनाफ़ा चीन्हने वाले ठगों और भेड़ियों को सबसे ज्यादा डर ऐसी ही रोशनियों से लगता है। मगर ये रोशनियां सलामत हैं। वे और आगे बढ़ रही हैं, यह सन्देश देश भर में आपदा राहत देते और उसके लिए लड़ते संगठनों और व्यक्तियों तक पहुंचाने की जरूरत है। ❑

समालखा में कस्तूरबा जयंती

गांधी स्मारक निधि, पंजाब, हरियाणा एवं हिमाचल प्रदेश तथा स्वाध्याय आश्रम, पट्टीकल्याणा की ओर से समालखा में कस्तूरबा गांधी की 152वीं जयन्ती पर श्रद्धांजलि सभा का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर गांधी स्मारक निधि प्राइमरी स्कूल की संचालिका सुनीता शर्मा ने बताया कि भारत छोड़ो आंदोलन के बाद गांधी जी गिरफ्तार कर लिए गए। उस समय सरकार की ओर से कहा गया कि वे गिरफ्तार नहीं की गई हैं, परंतु वे चाहें तो पति के साथ रह सकती हैं। कस्तूरबा को यह कृपा स्वीकार नहीं थी। दूसरे ही दिन उन्होंने मुम्बई की विशाल सभा में सरकार के विरुद्ध भाषण दिया । इस पर उन्हें गिरफ्तार कर आगा खां महल गांधी जी के साथ ही कैद में भेज दिया गया। वे दृढ़ निश्चयी थीं। मरणासन्न स्थिति में भी डाक्टर के परामर्श के बावजूद मांस का शोरबा लेने को तैयार नहीं हुईं।

इस अवसर पर प्राकृतिक जीवन केन्द्र की महिला चिकित्सक डा रितदर्शिनी ने बताया कि फीनिक्स आश्रम की स्थापना में उनका विशेष योगदान रहा। गिरफ्तारी के बाद उनका स्वास्थ्य ऐसा बिगड़ा कि फिर उसमें सुधार नहीं हुआ और 22 फरवरी 1944 को देह त्याग कर वे परमात्मा में विलीन हो गयीं। उनकी मृत्यु के उपरांत देश के लोगों द्वारा महिला कल्याण के लिए एक करोड़ रुपये एकत्र कर इन्दौर में कस्तूरबा गांधी स्मारक ट्रस्ट की स्थापना की गयी।

इस अवसर पर डॉक्टर विकास सक्सेना, अजय कुमार, रूढ़ा सिंह, अनीता, सोनिया, विकास, गांधी स्मारक निधि प्राइमरी स्कूल के शिक्षक शिक्षिकाएं, साधक साधिकाएं तथा आसपास के गणमान्य लोग उपस्थित थे। **-विकास सक्सेना**

बराबर नहीं हर व्यथा की अभिव्यक्ति

❑ स्वस्ति पचौरी

हर किसी के लिए कोरोना की आपबीती अलग रही है, इसलिए हर कोई अपने-अपने नजरिये से इसे देखने और समझने का प्रयास कर रहा है। बीते दिनों में सोशल मीडिया पर कई लोगों ने कोरोना काल के अपने-अपने दुःखों को बयान किया। समय तो वाकई विकट ही था, क्योंकि हमने 'भूमंडलीकरण या ग्लोबलाइजेशन' के चाहे जितने गुणगान किए हों, सच तो यही है कि अब कोई भी कहीं आने-जाने के काबिल नहीं बचा।

पिछले दिनों जहां कहीं भी देखा, वहां किसी न किसी के बिछड़ जाने की खबरें आती रहीं। ट्विटर, फेसबुक, अथवा अन्य सोशल मीडिया के माध्यम इस दौरान सभी को सहारा देते दिखाई दिए। 'राइट टू ग्रीव' के कई रूप हमने देखे। कोई किसी गाने से अपनी व्यथा बयान करता दिखाई पड़ा। कोई आखिरी बार अपने जन्मदिन की फोटो डाल अपने परिजनों को याद करता नजर आया। कोई किसी के पसंदीदा फूल की फोटो से अपने मन के सन्नाटे को शांत करता रहा।

तो कोई गाना गाकर या अपने बिछड़े हुए किसी परिजन या मित्र के पसंदीदा खाने-पीने या किसी भी अन्य चीज की तस्वीर लगाकर उन्हें अपना आखिरी नमन व्यक्त करता रहा। अपने-अपने मानसिक तनाव को लोगों ने अपने ढंग से सोशल मीडिया पर अभिव्यक्त किया। कोई और चारा भी नहीं बचा था। हर कोई अपने अकेलेपन और प्रलयंकारी समय में संवाद के माध्यम ढूंढ़ रहा था। हर किसी के लिए कोरोना की आपबीती अलग रही है और इसलिए हर कोई इसे अपने-अपने नजरिये से देख, समझ, एवं व्यक्त करने का प्रयास कर रहा है।

ऐसा होना स्वाभाविक भी है। आखिर त्रासदी ही ऐसी है, जहां एक- दूसरे का साथ नीरस हो चला है। ऐसे में 'वर्चुअल' साथ मिल जाना भी अपने आप में एक 'लग्जरी ' है। कोरोना से पहले भी समाज एक बंद दरवाजे के भीतर सीमित हो चुका था। यानी एक प्रकार की 'गेटेड कम्युनिटी' बन चुका था। बस कोरोना के बाद इस 'गेटेड कम्युनिटी' का दायरा हमारे घर के पायदान तक आ पहुंचा।

सोशल मीडिया पर व्यक्त होने वाली इन सब व्याकुलताओं के बीच एक ख्याल मन में आता रहा। तमाम चौकीदार जो अस्पतालों की देख-रेख करते रहे, जिनके सामने कई मरीजों ने दम तोड़ दिया होगा, दरवाजे की दहलीज पर ही, वे सारे सफाई कर्मचारी जो अस्पतालों का अहम् हिस्सा हैं, जिनके बिना कोरोना की लड़ाई मुमकिन नहीं, वे सभी ऑटो वाले जिन्होंने निःस्वार्थ ही अपने-अपने वाहनों की सेवाएं मुफ्त ही उपलब्ध करायीं, स्थानीय पत्रकार जो हर जिले-गांव से रिपोर्टिंग करते रहे, एम्बुलेंस ड्राइवर जो शायद मृतकों एवं मरीजों की गिनती भूल गए, खासतौर पर श्मशान घाट पर काम करने वाले सभी लोग—इन सबकी व्यथा की अभिव्यक्तियों का क्या होता होगा?

एक न्यूज चैनल पर बड़े-बड़े मनोवैज्ञानिकों के साथ एक न्यूज एंकर चर्चे कर रहे थे कि अपना मानसिक तनाव कम करने के लिए सब को क्या करना चाहिए। किसी ने राय दी, मैडिटेशन कर लो। तो किसी ने अंग्रेजी में फरमाया कि अपनी पसंदीदा किताब पढ़ लो। किसी ने कहा टी वी, मोबाइल सब बंद कर दो और बस मन में शान्ति बनाये रखो।

यह तो हम सभी को याद है कि कैसे पिछले साल तमाम तरह के लॉकडाउन में अपने को व्यस्त रखने के तरीके हमें सिखलाये जा रहे थे। टीवी पर एक एंकर अपने प्रोग्राम पर किसी गायक को ले आते। तो दूसरी तरफ इंस्टाग्राम पर 'डालगोना कॉफी' और 'साड़ी चैलेंज' होता नजर आता। कई लोग 'सेल्फी चैलेंज' करते तो कई 'फिटनेस चैलेंज' की फोटो डालते नजर आते। लेकिन यह सारे संवाद अंग्रेजी में और सभी चैलेंज एक खास तरह की जनता के लिए थे।

हल भी सारे ऐसे ही होते, जो वही कर सकता था, जिसके लिए 'वर्क फ्रॉम होम' जायज और मुनासिब था। आखिर 'वर्क फ्रॉम होम' अधिकांश जनता के लिए होता ही क्या है? 90 प्रतिशत लोग जो इनफॉर्मल सेक्टर का हिस्सा हैं, उन्हें कैसे समझाया जाए? फिर टेक्नोलॉजी, मोबाइल फोन पर मिलने वाले समाधान एवं यूट्यूब पर 'मैडिटेशन' वही कर सकते हैं, जिन्हें इनकी जानकारी हो, जो इन तक पहुंच सकें और इन्हें समझ सकें।

लेकिन तमाम ऐसे लोग भी हैं, जिनके पास यह सोचने का भी समय नहीं है कि मैडिटेशन करें तो कब, या फिर चंद क्षण प्रकृति के बीच बिता सकें तो कब, जो नहीं जानते की डालगोना कॉफी या 'जूम पर संगीत कार्यक्रम' क्या हैं - वे क्या करें, कहां जाएं? उनकी व्यथा का तो कोई हिसाब भी नहीं लगा सकता, क्योंकि उन्होंने महामारी बहुत करीब से देखी है। किसी अनजान व्यक्ति के खोने का आशय क्या होता है, या इस तरह के अन्धकार और हताशा में अकेलापन किसको कहते हैं, उन्होंने बखूबी समझा है।

उन्हें तो सुकून भी आसानी से नहीं मिल सकता। आखिर गरीब आदमी सुकून तलाशे या रोजी-रोटी ढूंढें? इतने लम्हे उनके पास नहीं होते, जहां वे आराम से बैठ, पूरे दिन भर बीती हुई घटनाओं पर इत्मीनान से विचार-विमर्श भी कर सकें। क्योंकि अगर सोच में पड़ गए तो उन्हीं सोच-विचारों में गोते लगाते रह जाएंगे और अगले दिन काम पर नहीं जा पाएंगे।

इन सभी लोगों ने मौत को बहुत निकटता से देखा है। परन्तु हमारे इन सभी भाई-बहनों के पास अपनी व्यथा को प्रकट, अभिव्यक्त एवं महसूस करने के साधन ज्यादा नहीं हैं। वे सब ट्वीट नहीं कर सकते। यदि करेंगे तो उनको शायद ही कोई पढ़ेगा। आखिर एक 'ब्लू टिक' इकॉनामी भी तो चलती रहनी चाहिए।

यहां कई दरवाजों को लांघना पड़ता है, फिर भी यह आवश्यक नहीं कि अनजान दरवाजे पर आपकी दस्तक किसी के कानों तक पंहुच ही जाए? ऐसे में 'टेली काउंसलिंग' और 'मेन्टल हेल्थ' की हेल्पलाइन्स के मायने इन सभी लोगों के लिए शून्य के बराबर हैं।

फिर दृष्टिविहीन लोग एवं जो सुन या बोल नहीं सकते, उनका क्या हो? सोशल मीडिया पर अनेक रंगों के मायने उनके लिए क्या हैं? कोरोना के अकेलेपन में संगीत के आशय उनके लिए क्या हैं? कहां जाएं वे सब अपनी व्यथा को लेकर? कौन सुनेगा, कौन समझेगा? इन सवालों के जवाब तक देने वाला कोई नहीं।

कोरोना का मानसिक प्रहार हर एक पर अलग तरह से हुआ है। एक ऐसा समाज, जो समावेशी विकास में यकीन रखता हो, ऐसे में 'डिजिटल इंडिया' के औजार सिर्फ उनके ही पास नहीं होने चाहिए, जो इंटरनेट की सीढ़ी का इस्तेमाल कर उन माध्यमों तक पहुंच सकते हैं।

तमाम श्मशानों पर काम करते लोग एवं अन्य ऐसे लोग, जिन्होंने सामने रह कर इस आपदा में सभी का साथ दिया है, उनके लिए सरकारों को विशेष सहायता प्रदान करनी चाहिए, जो उनके मानसिक तनाव को कम करने में सहायक बन सके। सिर्फ एक 'काउंसलिंग टेलीफोन नंबर' डालने से या इश्तहार निकालने से कुछ नहीं होता। गांव-गांव, शहर-शहर, गरीब तबके तक सन्देश पहुंचाना भी आवश्यक है। उन्हें उनकी भाषा में समझना एवं समझाना अनिवार्य है।

मेन्टल हेल्थ काउन्सलिंग के जितने प्रोग्राम हैं, उनके बारे में लोगों को सचेत करना, उन तक इन माध्यमों को पहुंचाना एवं अन्य प्रकार के ऐसे कार्यक्रम, जिनसे मानसिक तौर पर सबको थोड़ा इत्मीनान मिल सके, इस पर एक अलग नीति होनी चाहिए। इन पर संवाद होना चाहिए। इससे लोगों का खोया विश्वास भी जागेगा और मानसिक तौर पर गरीब और लाचार को मदद मिलेगी।

हमारे लिए व्यथा के आशय एवं उसके मायने बस उतने ही हैं, जितने हमें अपने आस-पास या सोशल मीडिया के माध्यम से दिखाई देते हैं, लेकिन ब्रॉडबैंड और 4 जी के उस पार, जमीन पर उमड़ती व्यथा ट्वीट के माध्यम से चीख नहीं सकती। कीबोर्ड के जरिये रो नहीं सकती। क्योंकि वहां व्यथा शांत रहने की आदी हो चुकी है, रोजमर्रा के सन्नाटे और रोजी-रोटी की मजबूरियों के बीच कहीं दबी बैठी है। ❑

कोरोना की तीसरी लहर भी आएगी, निपटने के लिए अभी से करनी होगी तैयारी

❑ प्रसून लतांत

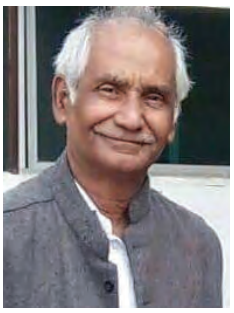

आज पूरा देश कोरोना संक्रमण की दूसरी लहर की विपदा से जूझ रहा है। अब यह लहर शहरों की सीमा पार कर गांवों तक फैल गया है। परिणामस्वरूप गंगा सहित अन्य नदियों में मानव शवों का बहते देख रहा है। यह विपदा अकेले सरकारों की चुनौती नहीं है। समाज के लिए भी है। हमारे, आपके और सबके लिए है। आज कोरोना की दूसरी लहर के विनाशकारी रूप को देखकर पूरे देश का दिल दहल उठा है। मौजूदा हाहाकार और कोहराम के बीच कोरोना की तीसरी लहर के आने की सूचना भी विश्वसनीय होती जा रही है। केंद्र सरकार के प्रमुख वैज्ञानिक ने इस बात की पुष्टि कर दी है कि कोरोना की तीसरी लहर भी आएगी। अब यह निराधार आशंका नहीं, बल्कि प्रबल संभावना बन गई है।

अब जब कोरोना की तीसरी लहर के आने की संभावना पक्की मानी जा रही है, तो हमें इससे निपटने का उपाय अभी से सोचना होगा, क्योंकि हम पहली लहर के बाद के छह महीने में कोरोना की दूसरी लहर से निपटने की पूर्व तैयारी करने के बजाय, इस खुशफहमी में रह गए कि अब कोरोना का प्रकोप ख़तम हो गया है। हम दूसरी लहर के आने की संभावना पर थोड़ा सा भी यकीन कर लेते और समय रहते कुछ तैयारी कर लेते तो आज जैसी आपाधापी नहीं होती। न इतने ज्यादा लोग मरते और न ही आम लोगों की कमर टूटती। इतने भारी संख्या में लोग बेरोजगार भी नहीं होते। विश्व स्वास्थ्य संगठन अगर कोरोना को वैश्विक महामारी घोषित करने में देरी नहीं करता तो पहली लहर से हुए नुकसान को भी रोका जा सकता था।

अभी इसी सप्ताह एक स्वतंत्र अंतरराष्ट्रीय पैनल ने अपनी 'यही आखिरी महामारी बने,' रिपोर्ट जारी की है, जिसमें कहा गया है कि जानलेवा कोरोना वायरस और खराब तालमेल की वजह से चेतावनी के संकेत अनसुने कर दिए गए। विश्व स्वास्थ्य संगठन बहुत पहले सचेत कर सकता था। एक के बाद एक खराब निर्णयों की वजह से एक अंतर्राष्ट्रीय रिपोर्ट के मुताबिक कोरोना अब तक करीब 33 लाख लोगों की जानें ले चुका है। साथ ही अर्थव्यवस्था को भी तबाह कर चुका है। रिपोर्ट में कहा गया है कि कोरोना की पहली लहर के पहले से ही लापरवाहियां हुईं। दुनिया आज जिस स्थिति में है,उसे रोका जा सकता था। वैश्विक महामारी घोषित करने में काफी समय लिया गया। 30 जनवरी तक चीन के हालात विकट हो चुके थे। लेकिन महामारी की घोषणा 11 मार्च को की गई। इस रिपोर्ट में कुछ सुझाव भी दिए गए हैं। मसलन तेज़ी से वैश्विक टीकाकरण की रफ्तार तेज की जाय। साथ ही अमीर देशों से गरीब देशों को एक अरब टीके की खुराक दान करने की अपील की गई है। दुनिया के धनी देशों से अगली महामारी की तैयारी के लिए समर्पित नए संगठनों को आर्थिक मदद मुहैया कराने की बात भी कही गई है।

यह तो तय हो गया है कि कोरोना की तीसरी लहर भी आएगी, वह किस रूप में आएगी, इस पर शोध जारी है। लेकिन यह कहा जा रहा है कि तीसरी लहर की चपेट में बच्चे भी आ सकते हैं। अब जरूरत है कि मौजूदा दूसरी लहर के विनाशकारी नतीजों से निपटते हुए तीसरी लहर को पराजित करने के लिए कुछ जरूरी उपाय अभी से ही सोचना होगा। क्योंकि कोरोना का भावी रूप जैसा भी होगा, लेकिन उससे बचाव के तरीके तो पहले जैसे ही होंगे। मसलन दूरी बनाए रखना, मास्क पहनना और बार बार हाथ धोते रहना। उसके लिए भी आम जनता को पूरी तरह से जागरूक करने की जरूरत है, क्योंकि अपने देश में महामारी को देवी का प्रकोप या पूर्व जन्म के पापों का परिणाम मानने वाले भी बहुतेरे हैं और इसके इलाज के लिए टोने टोटके करवाने वालों की संख्या भी कम नहीं है। आम जनता की सोच को अंध विश्वास से दूर हटाकर वैज्ञानिक बनाना होगा। बाकी का इंतजाम मसलन पर्याप्त वैक्सीन का उत्पादन और आपूर्ति, जरूरी दवाओं की उपलब्धता, अस्पतालों में बेड, डॉक्टर और स्वास्थ्यकर्मियों के इंतजाम की जिम्मेदारी सरकारी तंत्र की है। यह तंत्र तब बहुत बेहतर काम कर सकता है, जब आप जागरूक बनेंगे। ❑

कोविड योद्धा बनें सर्वोदय के साथी
सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष चंदन पाल की अपील

सभी प्रदेश एवं जिला सर्वोदय मंडलों के अध्यक्षों की सेवा में—

साथियों,

जयजगत!

भारत समेत दुनिया के कई देश इस समय नये कोरोना वायरस के तेजी से फैल रहे संक्रमण का सामना कर रहे हैं। देश में कोरोना संक्रमण की दूसरी लहर पहले की तुलना में करीब तीन गुना ज्यादा तीव्र है। स्वास्थ्य विशेषज्ञ संक्रमण के तेजी से फैलने के पीछे चार प्रमुख कारण मानते हैं। इनमें कोरोना के नये प्रकार का फैलाव, पूर्व में संक्रमित लोगों में प्रतिरोधक क्षमता का खत्म होना, भारत में वायरस के दोहरे बदलाव और कोरोना अनुकूल व्यवहार के पालन में भारी लापरवाही शामिल है।

नये वायरस के लक्षण बेहद अलग हैं। इनमें आंखों से पानी आना, सूजन और लालपन रहना, पेट में ऐंठन, उल्टी आना, दस्त जैसी समस्या शामिल है। बीमारी के दौरान और ठीक होने पर कई हफ्ते तक थकान महसूस होना, नीद की कमी, मनोभ्रम, कानों में झनझनाहट और सुनने में दिक्कत, लंबे समय तक बदली हुई आवाज में खांसी आना, छाती में बेचैनी के साथ सांस लेने में दिक्कत, तेजी से दिल धड़कना, सूजन की शिकायत तथा भोजन की महक और स्वाद को महसूस न कर पाना शामिल है।

वायरस के तेज फैलाव के कारण कई राज्यों ने लॉकडाउन का ऐलान किया है। स्कूल, कॉलेज बंद हो गये हैं। अस्पतालों में बेड और ऑक्सीजन की कमी हो गयी है। सरकार के द्वारा किये जा रहे प्रयास नाकाफी साबित हो रहे हैं।

इस महामारी की चपेट में लाखों लोगों को अपनी जान गंवानी पड़ी है, जिसमें सर्वोदय परिवार के अनेक लोग भी शामिल हैं।

संकट की इस घड़ी में संक्रमण से जूझ रहे लोगों के प्रति हम अपनी सद्भावना और एकजुटता तथा शोक-संतप्त परिवार के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त करते हैं।

संकट के समय सेवा करने की सर्वोदय परिवार की गौरवशाली परंपरा रही है, जिसकी शुरुआत महात्मा गांधी ने अपनी जान जोखिम में डालकर दक्षिण अफ्रीका में प्लेग के रोगियों की सेवा से की थी। इस कठिन समय में सर्वोदय कार्यकर्ता चुपचाप नहीं बैठ सकते। कोरोना दिशा-निर्देश का स्वयं पालन करते हुए प्रभावित लोगों की मदद करना हमारा परम कर्तव्य है। जनता में जागरूकता फैलाना एक महत्त्वपूर्ण कार्य है, जैसे मास्क पहनना, दो गज दूरी का पालन करना, साबुन से हाथ बार-बार धोना या सेनेटाइजर का इस्तेमाल करने आदि का प्रचार-प्रसार करना। रोग के लक्षण दिखायी देने पर तुरंत जांच कराना है। साथ ही साथ टीकाकरण के लिए पंजीकरण में मदद करना, उपचार के लिए जरूरी सुझाव देना, हैंडबिल, पोस्टर, वाल राइटिंग, सोशल मीडिया द्वारा प्रचार-प्रसार करना आदि का कार्य सर्वोदय कार्यकर्ता करें, ऐसी मेरी आशा और अनुरोध है।

मुझे पूरा विश्वास है कि संकट की इस घड़ी में सर्वोदय कार्यकर्ता शांति सैनिक की अपनी ऐतिहासिक भूमिका का पूरी जिम्मेदारी से निर्वाह करेंगे। प्रदेश, जिला व स्थानीय स्तर पर स्वैच्छिक शांति सैनिकों (पुरुष, महिला तथा इच्छुक लोकसेवक, सर्वोदय मित्रों) की एक सूची बनायी जाय। इसमें हर शांति सैनिक का नाम, पता, उम्र, मोबाइल नंबर, ई-मेल आदि दर्ज करके एक रजिस्टर बनाना चाहिए। इलाके के कोविड अस्पताल का मोबाइल नंबर और कोविड पेशेंट के लिए एम्बुलेंस मोबाइल नंबर, कोविड डॉक्टरों के नाम, मोबाइल नंबर, डेड बॉडी ले जाने के लिए वाहन का मोबाइल नंबर शांति सैनिकों के पास रहना जरूरी है। जरूरत पड़ने पर डेड बॉडी का अंतिम संस्कार के लिए प्रशिक्षण लेने के बाद अंतिम संस्कार में मदद करना।

इस संकटमय परिस्थिति में किसी तरह का भेदभाव तथा पूर्वाग्रह न रखते हुए व्यक्ति, समुदाय और स्वैच्छिक संगठनों तथा प्रशासन के साथ मिलकर-जुलकर काम को आगे बढ़ाना जरूरी है। संकट की इस घड़ी में राज्य एवं समाज के बीच सेतु बंधन के माध्यम से काम को आगे ले जाना चाहिए। आपके द्वारा किये जा रहे कार्य की संक्षिप्त रिपोर्ट सेवाग्राम कार्यालय को अवश्य भेजें। साभिवादन!

अपना और अपनों का ख्याल रखें

मैं भरे गले से अपनों को खोने के दर्द से आहत उन भारतवासियों से संवाद स्थापित करना चाहता हूं, जिन्होंने उन अव्यवस्थाओं का सामना किया। जब इस महामारी में अपने किसी परिजन या स्वयं के इलाज के लिए अस्पताल पहुंचे, तो ऑक्सीजन सिलेंडरो की आपूर्ति सुनिचित करवाने में सरकारों की विफलताएं हममें से किसी से छिपी नहीं हैं। ऐसा लगता है, जैसे सरकार का पूरा स्वास्थ प्रवंधन ही चरमरा गया हो, राहत एवं मरीजों की देख भाल में गंभीरता के अभाव ने हमारी आँखे खोल दीं। विश्व स्वास्थ संगठन ने तीसरी वेव की भी चेतावनी दी है, जो बच्चों के लिए खतरनाक साबित हो सकती है। ऐसे में हमें अपने नैनिहालों के स्वास्थ की चिंता सताने लगी है। जब हम एक ऐसे डरावने दौर से गुजर रहे हैं तो इन सब महत्वपूर्ण तथ्यों और पूर्व सावधानी के उपायों के साथ साथ हमें एक ऐसी सुदृढ़ व्यवस्था के बारे में भी सोचना चाहिए, जो हमें बेहतर स्वास्थ्य सुविधाओं से युक्त बेहतर प्रणाली के साथ एक बेहतर परिवेश उपलब्ध करा सके और हमारे लिए महत्वपूर्ण आवश्यकताओं जैसे रोटी, कपड़ा और मकान के साथ स्वास्थ्य, सुरक्षा और सम्मान दिला सके। आइये, इक्कीसवीं सदी के भारत के नवनिर्माण का संकल्प लें और अपने और अपने परिवार का विशेष ख्याल रखें। **-नीरज कुमार**

श्रद्धांजलि

के एम नटराजन

तमिलनाडु के वरिष्ठ सर्वोदय नेता और गांधी-विचार तत्त्वज्ञ के एम नटराजन का 24 मई 2021 को निधन हो गया। वे 89 वर्ष के थे। कोविड पाजिटिव होने के बाद उन्हें अस्पताल में भरती कराया गया था।

विरुदनगर जिले के मुंडराइप्पू नामक देहात में वे एक ब्राह्मण परिवार में 20 जनवरी 1933 को पैदा हुए और 14 साल की उम्र में ही गांधी परिवार में शामिल हो गये। कॉलेज की पढ़ाई के दौरान ही 15 अगस्त 1947 को देश को आजादी मिली। इस वाकये ने उनके जीवन की दिशा बदल दी।

वे हमेशा सर्वोदय के उस समय के सर्वोच्च नेता एस जगन्नाथन एवं कृष्णम्माल के साथ रहे और उन्हीं से सर्वोदय कार्यकर्ता होने की शिक्षा दीक्षा पाई। राष्ट्रीय राजमार्ग विभाग में लगी नौकरी छोड़कर 1956 से 57 तक एक साल वे विनोबाजी के साथ भूदान पदयात्रा में रहे। भूदान आंदोलन के दरम्यान ही खेती को आधुनिक बनाने के तरीके सीखने इजराइल भी गये। उन्होंने भूदान में बहुत ही गहराई से काम किया।

आगे चलकर वे लोकनायक जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में संपूर्ण क्रांति आंदोलन में भी शामिल हुए और जेल भी गये। वे सर्वोदय या गांधी तत्वज्ञान पर व्याख्यान देने दुनिया भर में जाते थे। वे बहुत सफल लेखक भी थे। वे जे सी कुमारप्पा के आर्थिक तत्वज्ञान से प्रभावित थे, इसलिए खादी ग्रामोद्योग के निर्माण से भी जुड़े थे। उन्होंने खादी मित्र नामक संस्था भी चलाई। वे तमिलनाडु गांधी निधि के चेयरमैन, मदुरै गांधी संग्रहालय के मंत्री और गांधीग्राम ट्रस्ट के विश्वस्त वरिष्ठ साथी थे। वे अंग्रेजी एवं तमिल में निकलने वाली सर्वोदय पत्रिका 'सर्वोदय तलिस्मा' के संपादक रहे। मदुरै में वे एक किताबघर भी चलाते थे।

सुप्रसिद्ध लेखक, इतिहासकार रामचन्द्र गुहा उनके निधन पर लिखते हैं ''मुझे इसका गहरा आघात लगा कि हममें से एक विद्वान गांधीजन का स्वर्गवास हुआ। के एम नटराजन विनोबा भावे और जगन्नाथन जी के बहुत करीबी थे, जे सी कुमारप्पा के सच्चे अनुयाई तो थे ही, वे उनके उत्तराधिकारी भी थे। वे न केवल करुण हृदय थे, बल्कि युवाओं के लिए प्रेरक व्यक्ति भी थे। इस विषाणु ने उन्हें भी लील लिया।''

सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष चंदन पाल ने इसे सर्वोदय परिवार की अपूरणीय क्षति बताया है। तमिलनाडु के प्रेरणा स्थान और अपने वैचारिक आधार का खोना भी कहा है। वे अपने पीछे तीन पुत्र और एक पुत्री के अलावा नाती, पोते, पोती भी छोड़ गये हैं। उनकी पत्नी का दो साल पहले ही स्वर्गवास हुआ था।

–डॉ. सुगन बरंठ

त्रिलोकचंद गोलेच्छा

राजस्थान के सर्वोदय कार्यकर्ता त्रिलोकचंद गोलेच्छा 2 मई को रात 11.30 बजे देह छोड़ गए। वे 96 वर्ष के थे और आशा बहन बोथरा के पिता थे। त्रिलोकचंद जी जरा भी व्यर्थ समय न गँवाने वाले जीव थे, जिसे शास्त्रों में 'अप्रमादी' कहा है। त्रिलोकचंद जी कोरोना के समय तक रोजाना गोशाला का काम देखते रहे। वे किसी पद पर नहीं थे।

वे लिंग भेद भी नहीं मानते थे। आज से 75 साल पहले अपनी पत्नी छगन बहन को उन्होंने राजस्थान की पहली महिला सरपंच बना बनवाया। छगन बहन ने तो अपनी बेटी आशा के साथ 10वीं तक पढ़ाई की और बेटी से पहले वे एम.ए. हुई। शादी के बाद पत्नी पढ़े, यह आज के 75 साल पहले कितना क्रांतिकारी कदम था। 75 साल पहले पाखाने की सफाई करने के कारण वे जाति के बाहर निकाले गए, किन्तु वे अपने सिद्धांतों के पक्के थे। उन्होंने अपनी बेटियों को अस्पृश्य समझे जाने वाले लोगों के साथ पढ़ाया।

वे न केवल त्यागी थे, बल्कि अपनी सारी संपत्ति के ट्रस्टी हो कर जी रहे थे। व्यापार भी उसी तरीके से किया। वे हमेशा कहते थे कि मैं तो गांधी के चरणों की धूल का कण भी नहीं। उन्होने कभी कोई पद या जाति से मिलने वाली उपलब्धियों को नहीं भोगा। उन्होंने गोकुल भाई भट्ट और सिद्धराज ढड्ढा के साथ काम किया और राजस्थान समग्र सेवा संघ और राजस्थान गोसेवा संघ के अध्यक्ष रहे।

देवेश्वर बरुआ

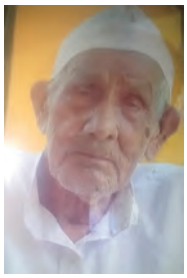

स्वतंत्रता सेनानी और असम के वरिष्ठ सर्वोदय कार्यकर्ता देवेश्वर बरुआ का 14 मार्च 2021 को 98 वर्ष की उम्र में निधन हो गया। वे अपने युवा काल से ही सर्वोदय आंदोलन से जुड़ गये थे और आजीवन सक्रिय रहे। उन्हें सर्वोदय पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया था।

असम सर्वोदय मंडल की ओर से भीमकांत कोंवर ने देवेश्वर बरुआ को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि उनके निधन से सर्वोदय आंदोलन की अपार क्षति हुई है। हम उनके परिवारजनों के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त करते हैं। **-भीमकांत कोंवर**

भूल सुधार

सर्वोदय जगत, वर्ष 44, संयुक्तांक 16-17 दिनांक 1-30 अप्रैल 2021 के पृष्ठ संख्या 7 पर प्रकाशित आलेख 'एक विदेशी युद्ध संवाददाता, जिसने दिखायी दुनिया को अहिंसा की ताकत' के लेखक अरुण कुमार त्रिपाठी का चित्र भूलवश गलत प्रकाशित हो गया है। उनका वास्तविक चित्र यह है। **-सं.**

रक्षा कवच बनना, जिन्दगी को होम करने का यज्ञ है
(कोविड डायरीज़)

❑ अणु शक्ति सिंह

कोविड-19 की दूसरी लहर के दरम्यान, जब देश का स्वास्थ्य सिस्टम चरमरा गया था, लोग ऑक्सीजन, बेड, अस्पताल और इलाज के अभाव में शहरों और गांवों में अकाल मृत्यु का शिकार हो रहे थे, तब सरकारें फेल होती दिखायी दे रही थीं, लेकिन समाज प्रकट होता हुआ दिख रहा था। जब महामारी अपने उरूज पर थी और सिस्टम धराशायी हो गया था, तब लोग, लोगों की मदद में सड़कों पर उतरे। पड़ोसी, पड़ोसी की मदद भले नहीं कर पाया हो, पर सोशल मीडिया के दौर में दूर शहरों, यहां तक कि दूर देशों में बैठे लोगों ने भी बीमारों और असहायों के लिए आक्सीजन जुटाई, बेड उपलब्ध कराये, रुपये पैसे और खाने-पीने की सहायता पहुंचायी। अणुशक्ति सिंह बीबीसी के लिए लिखती रही हैं। उन्होंने सर्वोदय जगत के पाठकों के लिए कोविड से संघर्ष करते लोगों की जिन्दा कहानियां भेजी हैं। वे एक लेखक हैं, वे एक पत्रकार हैं, वे एक कोविड वारियर भी हैं, जिन्होंने कई-कई रातें लगातार जागकर लोगों तक मदद पहुंचायी और वह सब, जो देखा, उसे कोविड डायरीज के नाम से लिपिबद्ध किया। **-सं.**

एक लड़की है। उसने सुबह पिता को खोया। फ़ोन पर दहाड़ मार कर रो रही थी। इतना कि फ़ोन करने वाले हाथ काँप गये। घंटे भर बाद वह अपनी दोस्त को मैसेज करती है। मैं जो भी होगा करूँगी, किसी और को पापा जैसी हालत में नहीं जाने दूँगी।

एक युवा स्त्री, जिसने अपने साथी को कुछ महीने पहले खोया है, लोगों की जिंदगी बचाने की मुहिम में जुटती है। लगातार स्टॉक की जाती है। गालियाँ मिल रही हैं फ़ोन पर। फिर भी लगी हुई है क्योंकि वह नहीं चाहती कि किसी और की जिंदगी में उसके जैसा मोड़ आये।

कुछ दिनों पहले सोशल मीडिया पर एक वीडियो वायरल हो रहा था, अकेले बीमार पड़े ऑक्सीजन के लिए तड़प रहे व्यक्ति के लिए मदद का सिलेंडर एक बीस-बाइस साल का लड़का लेकर पहुँचा था। वह लड़का आज ख़ुद कोविड ग्रस्त है, पर उसका जोश हाई है।

एक लड़की है, जो दुनिया भर की मदद करती है, वह अपनी नानी के पास भी पहुँच नहीं पायी। फ़ोन पर जी भर कर रोती है, फिर काम में लग जाती है।

एक लड़का है, जो दुनिया, जहान को निचोड़ कर व्यवस्था करता है। ख़ाली जेब है उसकी। वह एक निरुपाय मज़दूर को ऑक्सीजन दिलवाना चाहता है। नहीं दिलवा पाता है। पीड़ित की जान चली जाती है। वह टूट जाता है। लेकिन अगली सुबह वह फिर उठ खड़ा होता है फिर नयी लड़ाई के लिए।

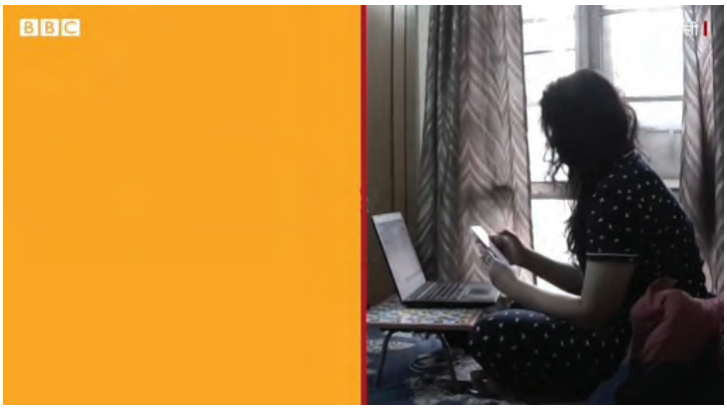

एक दूसरा लड़का जीतोड़ कोशिश करता है किसी को दवाई दिलवाने के लिए। सिस्टम से लड़ता है, झगड़ता है। हार जाता है। पर उम्मीद नहीं खोता है। फिर उठता है।

एक लड़की विदेश में बैठी है। नौकरी करती है। साथ में लोगों की मदद में लगी होती है। जाने वह सोती कब है? सोचती हूँ, हमेशा वह कैसे मैनेज करती है।

कई-कई बच्चे कॉलेज की पढ़ाई के साथ रात-रात भर जागते हैं। ऑक्सीजन, बेड, प्लाज्मा की जानकारी पता करते हैं।मदद करने की कोशिश करते हैं। नींद उनसे रूठ गयी है।

ऐसे कई किस्से हैं। शहादत के कई किस्से होते हैं। अकेला सैनिक शहीद नहीं होता। इन निहत्थे सैनिकों की व्यथा कथा क्या ही बाँचे कोई! बस ये नोट्स लिखते हुए सोच रही थी कि इन्हें क्या हासिल होगा? ये समाज का गौण हिस्सा हैं। गौण ही रहेंगे। इनके करियर चार्ट पर 'अमेजिंग वर्क इन पैंडेमिक' नहीं लिखा जाएगा।किसी इतिहास के पन्ने में नहीं दर्ज होंगे ये।

कोई नहीं जानता कि किस मानसिक त्रासदी से गुज़रते हैं ये लोग रोज़-रोज़। किसी को फ़र्क नहीं पड़ता कि ढहे हुए सिस्टम को खींच रहे वे हज़ारों कंधे किसके हैं।

ना, ये लोग महान नहीं हैं, न ही भगवान बनने के चाहक। ये बस आम लोग हैं। विशुद्ध साधारण लोग, जिन्हें मनुष्यता का तक़ाज़ा मालूम है और यह भी मालूम है कि उन्हें कब

शिकायत नहीं करनी है।

इन्हीं हज़ारों आम लोगों को मेरा सलाम। हाँ फिर से, इसे महानता नहीं, मानवता में शामिल कीजिए। मानवता, जिसे शायद हम पहचानने में अक्सर चूक जाते हैं।

आँखे बंद हुई थीं। गहरी नींद का पहला झोंका था। एक लड़की की कॉल आती है, मुझसे कहती है, हॉस्पिटल में बेड दिलवाने को। मैं आलस में कुनमुनाती हुई कहती हूँ, सुबह करूँगी। थोड़ी देर बाद फिर कॉल आती है। नींद का पहला झोंका है ही। स्वप्न के भी कई तल हैं। वह लगभग चीखते हुए गुहार लगाती है। मैं उठ नहीं पाती हूँ। उसकी चीख को सपने की परतों में लपेट कर सो जाती हूँ।

सुबह उठते ही पहला ख़याल उस लड़की का आया। उसे कॉल किया गया बेतरह। फ़ोन बंद था। मन उदास हो गया।

बारी आयी व्हाट्सऐप खंगालने की। वह पहली ख़बर उदास करने वाली थी। मन बुझ गया। व्हाट्सऐप बंद कर देने का मन हुआ, पर कैसे? कैसे कोई बंद कर दे, जब हर दूसरे मैसेज के साथ एक एसओएस की पुकार हो।

उम्मीद की आवाज़ बुझते मन को नयी रफ्तार देती है। उँगलियाँ फिर घूमती हैं। टिपिर टिपिर मोबाइल के बटन और ऐम्ब्यूलेंस के चिल्लाते सायरन। ऐम्ब्यूलेंस की आवाज़ नींद में है, चाय की घूँट में है, खाने के निवाले में है, फ़ोन के बैकग्राउंड में है, मदद की आवाज़ के साये में है।

यह आवाज़ डराती रही है। डर से पार पाने का इकलौता रास्ता उसका सामना करना था। नयी दुनिया तब तक ही डराती है, जब तक हम उसका हिस्सा नहीं हो जाते। पहचान होते ही सब डर जाता रहता है। दूरी बढ़ते ही डर घेरने लगता है वापस।

आँखों के गोले के चारों ओर बन गये लाल छल्ले अक्सर कहते हैं, छोड़ो। पीठ की दर्द नीद से मुबाहिसा करता है। देर रात धुल रहे खनकते बर्तन पूछते हैं, तुमने जिम्मेदारी ली है क्या?

मैं जवाब अपने अंतस से माँगती हूँ। कानों को याद आती है वही गरजती आवाज़, जो हर थोड़ी देर पर बग़ल की सड़क से गुज़र जाती है।हाँ, है तो जिम्मेदारी जिंदगी की। मैं ख़ुद से सवाल करती हूँ, कब तक टिकोगी? जवाब दिमाग़ के किसी कोने में डेटा सा फिट है-आखिरी साँस तक।

हम विचित्रताओं से भरे देश में रहते हैं। लोग पट-पट गिर रहे हैं, वहीं धन रोगियों को होर्डिंग लगानी है। एक्स्ट्रा ऑक्सीजन ख़रीदना है।डिस्चार्ज के बाद का हॉस्पिटल बेड बैकअप तैयार रखना है। 95 ऑक्सीजन पर हाय-तौबा मचा देना है। तीस पर सड़क पर घूम रहे पेशेंट को देखकर आँखें बंद कर लेनी हैं।

एक डॉक्टर साहब कहने आते हैं, 'मैं इस देश के लिए इतनी बड़ी क़ुर्बानी दे रहा हूँ। कितना बढ़िया विदेश जाकर पैसे कमा रहा होता।'

एक देवी जी, हॉस्पिटल में वेंटिलेटर बेड बुक करके रखना चाहती हैं कि सुधार की ओर बढ़ रही उनकी वृद्धा माँ के लिए भविष्य में इस्तेमाल कर सकें।

एक भाई साहब पिता के लिए बुक किए हुए हस्पताल में चॉइस चाहते हैं, जैसे कि वे शॉपिंग पर निकले हों। यह सब उस वक्त, जब कई लोगों को शायद हॉस्पिटल में एक अदद बेड नहीं मिल पा रहा है।

एक देवी जी नब्बे ऑक्सीजन वाले पति के लिए मुझे फ़ोन करके बेड बुक करवाना चाह रही थीं, यह उस वक्त, जब मैंने 58 ऑक्सीजन वाली माँ की कराह और उसे शांत करवा रहे/ हिम्मत दे रहे बेटे का दुःख फ़ोन पर सुनकर फ़ोन को काटा ही था।

एक लड़की की पुकार सुनकर देश के अलग-अलग जगहों से पाँच-सात लोग आधी रात की नींद त्याग देते हैं। उसके लिए व्यवस्था में लग जाते हैं। उसे फ़ोन किया जाता है। वह फ़ोन नहीं उठाती है। बाद में पूछने पर कहती है, मैंने लगातार पाँच-छः कॉल किए, अब थक गयी हूँ। यह बात वह उन लोगों से कहती हैं, जिन्होंने उसकी माँ की बेहतरी की ख़ातिर पच्चीस फ़ोन कर दिए।

एक महोदय लिखते हैं, दो-चार फ़ोन घुमाकर क्या होता है? यह वे हैं, जिन्होंने अपनी मदद के अलावा कभी किसी के विषय में सोचा नहीं।सम्पदा के रूप में केवल अचल चीज़ें इकट्ठा कीं और सीखा मीन-मेख निकालना।

यह सब हमारे देश की विचित्रता है। इन्हीं विचित्रताओं में रहते हैं वे लोग भी, जो आधी रात हो या पूरी, जागते हैं, कोशिश करते हैं कि बचायी जा सके एक अदद जान। ईश्वर के हाथ में नियति है, किंतु कोशिश हमारी बाँदी है।

बहुत गहराती रात है। पर्दे हटाकर बालकनी से बाहर देख रही हूँ। पौधों में जान ख़त्म हो रही है। कितने दिनों से पानी नहीं मिला है उन्हें। फूल खिलकर मुरझा रहे हैं। जैसे उम्मीदें धड़ाम से गिर रही हैं ज़मीन पर इन दिनों। लगभग हफ्ते भर से न सोने के बाद भी नीद आँखों से गायब है।

ऐसा लग रहा है, जैसे अवेंजर्स इनिफिनिटी वॉर के सेट्स पर हूँ। किसी ने चुटकी बजा दी है और धड़ाधड़ लोग गिर रहे हैं। अवेंजर्स के पास तो सुपर पॉवर भी था। हम जैसे अदने से लोग न जाने किस बूते इस थनोस से लड़ने के लिए मैदान में खड़े हैं।

लोग ईश्वर, मसीहा सब कह दे रहे हैं। इन शब्दों को सुनते हुए याद आती हैं वे पीड़ाएँ, जो रोज़ थोक में हासिल होती हैं। हाथ छूटना, झप्प से सब ख़त्म हो जाना।

लगता है, हलाहल का कटोरा गले में अटका हुआ है। जिसे गले में अटकाये रखना है। शिव होने का हलका सा भ्रम होता है। चाहना यह कि दुनिया को रक्षा कवच पहना दूँ।

रक्षा कवच बनना, जिंदगी को होम करने का यज्ञ है। जब यज्ञ वेदी पर ख़ुद को आहूत करने बैठे हैं, तब क्यों नहीं सब वैसा हो पाता, जैसा सोचते हैं।

ईश्वर की सत्ता से विमुखता होती जा रही है। ख़ुद ही वे रास्ते ढूँढ़ने हैं, जिनसे पार पाना है। लोगों की आस भरी नज़र को बाहर निकलने का सबसे माकूल रास्ता दिखाना है।

यह रास्ता चुना गया है। इसके सिवा कोई और रास्ता नहीं है। जलती हुई लौ का वह नील पकड़ना है। बुझने से पहले बचाना है। ❑

प्रसंगवश

आयुर्वेदिक बनाम एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति

❑ डॉ. ज्योत्सना मिश्रा

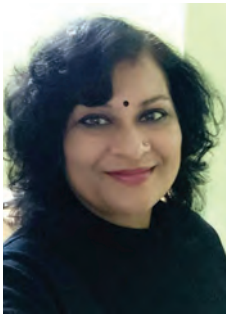

इकतीस दिसम्बर दो हजार उन्नीस को डब्ल्यूएचओ को नोटीफाई किया गया कि वुहान में एक अनजान तरह के न्यूमोनिया से लोग बीमार हो रहे हैं। वैज्ञानिक एकमत हुए कि यह एक वायरसजन्य बीमारी है, जो शायद किसी जंगली चमगादड़ प्रजाति से आई है, पर एचआईवी वायरस की खोज के लिए नोबल पुरस्कृत ल्यूक मॉनटैनियर कहते हैं कि संभवतः वुहान की एक अति आधुनिक प्रयोगशाला में एचआईवी की वैक्सीन पर काम चल रहा था। इस वायरस की वैक्सीन बनाने के लिए एक अन्य वायरस को जीन स्तर पर काटा छांटा जा रहा था।

यहां वैक्सीन के विषय में थोड़ा जान लेना उचित होगा,मोटे तौर पर किसी शरीर में किसी बीमारी से लड़ने की क्षमता पैदा करने के लिए उसी बीमारी के कीटाणु या विषाणु का ऐसा हिस्सा या टाक्सिन शरीर में डाला जाता है, जो बीमारी से लड़ने वाले एंटीबाडीज़ को बनने की तो प्रेरणा दे, पर स्वयं बीमारी न पैदा करे।

एचआईवी के जीनोम का एक छोटा हिस्सा कोरोना से मिलता जुलता है, इससे भी मॉनटेनियर की बात सही लगती है। वे कहते हैं कि एचआईवी का या कोई अन्य वायरस, जिसे वैक्सीन बनने के लिए तराशा जा रहा था, अनायास ही वैज्ञानिकों के कंट्रोल से बाहर निकल गया और एक नयी तरह की बीमारी का कारक बन गया।

पहला शिकार हुईं उसी लैब की एक टेक्नीशियन और दूसरा उसका पुरुष मित्र। फिर उनसे स्थानीय मछली बाजार में एक नयी अनोखी बीमारी फैल गयी। वुहान को तत्काल प्रभाव से सील कर दिया गया, पर प्रकृति क्रोध में थी। उसने मनुष्य का अधिकार मानने से विद्रोह कर दिया और यह सूक्ष्म जीव किन्हीं रास्तों से निकलकर पूरे विश्व में कहर बरपा करने लगा।

भारत सरकार ने चौबीस मार्च को लॉकडाउन की घोषणा की, तब तक यह अनुमान नहीं था कि इस कहर की उम्र क्या है? कब तक और किस हद तक यह मानव को प्रभावित करेगा, यह अभी काल के गर्त में था। सामान्य मनुष्य को वैश्विक महामारी के बारे में ही जानकारी न थी, तो कोरोना तो था ही

एकदम से अचकचा देने वाला नया नकोर वायरस। वैज्ञानिकों को इसकी संरचना का आकार प्रकार जानने में जितना समय लगा, उतने में तो यह दूर दूर तक पहुंच गया।

आज से सौ साल पहले का नागरिक इन अनायास आने वाली विपदाओं के लिए कुछ हद तक तैयार रहता था। बिजली गिरने, बाढ़ आने और सूखा पड़ने की ही तरह चेचक या किसी और महामारी की जिम्मेदारी ईश्वरीय प्रकोप पर रख छोड़ना सुगम उपाय था या कहें कि तब कोई चारा ही नहीं था चुपचाप स्वीकार करने के सिवाय। पर पिछले कई दशकों से हमने ऐसी महामारी नहीं देखी थी, जो हमारे सबसे विश्वसनीय डॉक्टर को भी डरा रही थी। समानांतर अन्वेषण जैसी कोई चीज़ होती है, हम भूल चुके थे। हम भूल चुके थे हैजा, प्लेग, स्मॉल पॉक्स से उत्पन्न अपनी असहायावस्था को। हम भूल चुके थे कि विश्व की पहली वैक्सीन बनने में सालों नहीं, सदियां लगी थीं। हम भूल चुके थे कि पहले भी महामारी फैलती थी तो घरों में क़ैद हो जाने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं होता था।

लॉकडाउन तक तो मजबूरी रही, पर लॉकडाउन हटते ही हम अदबदा के बाहर निकले और शादियां, मेले, रैलियां, जलसे और उत्सव शुरू हो गये। ऐसा नहीं था कि ये सिर्फ हमारे देश में हुआ, बल्कि सभी जगह मनुष्य एक ही तरह व्यवहार करता रहा और इस प्रलय को बढ़ने का मौका देता रहा।

बीच के कुछ महीनों में केस की दर घटने से हम निश्चिंत हो गये, सरकारें और वैज्ञानिक भी कुछ हद तक स्थिति नियंत्रित समझने लगे, लेकिन फिर ये वायरस रूप बदलकर आ गया। इस बार निश्चित रूप से कई स्ट्रेन के वायरस हवा में घूम रहे थे। इनमें से कुछ सहृदय थे तो कुछ अत्यंत घातक। कुछ स्ट्रेन दिनों में क्या, घंटों में फेफड़ों को चूहे की रफ्तार से कुतर कर रख देते।

अप्रैल दो हजार इक्कीस तो एक महीने लंबी कयामत की रात थी। अस्पतालों में बिस्तर नहीं, आक्सीजन नहीं, डॉक्टर नहीं, स्टाफ नहीं और मृत्यु दर इतनी ऊंची कि शायद ईश्वर भी हक्का बक्का खड़ा देखता रह गया।

वैक्सीन बन चुकी थी और महामारी की विभीषिका के दौरान वैक्सीन नहीं लगाई जानी चाहिए, पर लगाई जाती रही। कुछ उसी तरह, जैसे डूबता हुआ इंसान हाथ पैर मारता है।

मई के आखीर तक महामारी उतार पर दिखने लगी और अब शुरू हुआ दोषारोपण का खेल। सरकार स्थिति से निपटने में नाकाम रही थी, पर इसे सर झुका कर मानने को कैसे तैयार होती। स्वास्थ्य कर्मी हमेशा की तरह ढ़ाल की तरह बरते गये। सारी जिम्मेदारी डॉक्टरों और अस्पतालों पर डाल दी गयी।

जनता के कई प्रश्न थे, जैसे पहले ये दवा दी गयी, अब मना हो गयी, तब पहले क्यों दी गयी? यह अब करने लगे, पहले जब मेरे संबंधी की मृत्यु हुई, तब क्यों नहीं किया?

नयी बीमारी का इलाज उसके आने के बाद ही ढूंढा जा सकता है। पहले इलाज और वैक्सीन मिल जाये, बाद में महामारी आये, ऐसा संभव नहीं। किसी भी दवा की कामयाबी स्थापित करने के आंकड़े जुटाने में समय लगता है। ये अजीब लगने वाली बातें त्रस्त और दुखी जनता सुनने को तैयार नहीं थी और डाक्टर अपने घरवालों को ही बचा सकने में असमर्थ, इन सवालों का जवाब देने मे कतई उत्सुक न थे।

महामारी की लहर को एक दिन गुजरना था, गुजरी पर ब्लेम गेम की बीमारी स्थाई थी। पूरे विश्व में तरह तरह से एक दूसरे पर दोषारोपण किया गया। इन्हीं दिनों जब स्वास्थ्य सेवाओं को समृद्ध और उत्साहित किया जाना चाहिए था,भारत में एक अलग ही विमर्श चलने लगा, ऐलोपैथी बनाम आयुर्वेदिक का।

शुरुआत में तो शायद हताशा में स्वयं ही कुछ उपाय सोचने की बेचैनी में यह हुआ, लेकिन बाद में एक आयुर्वेदिक दवा निर्माता ने यह मुद्दा अपने हित साधन के लिए इस्तेमाल करना शुरू कर दिया। आयुर्वेद के बहाने तरह तरह के आहार और घरेलू नुस्खे भी एलोपैथी से बेहतर बताये जाने लगे। आयुर्वेद के एक व्यवसायी ने तो सीधे आरोप लगा दिया कि ऐलोपैथी की वजह से यह बीमारी फैली। मज़ा यह कि उक्त दवा व्यवसायी ने आयुर्वेद की विधिवत पढ़ाई कभी नहीं की।

इस पूरी जंग में आयुर्वेदिक डाक्टरों और आयुर्वेदिक दवा कंपनियों को नेपथ्य में भेज दिया गया। बात उड़ी तो ऐसे उड़ी कि रातों-रात आयुर्वेदिक पद्धति हिंदू और आधुनिक दवा पद्धति ईसाई हो गयी। सच यह है कि जिसे हम आम बोल चाल में ऐलोपैथी कहते हैं, वह कोई जड़ विचार नहीं है, इसमें लगातार परिवर्तन आते हैं। इसे दर असल साक्ष्य आधारित पद्धति या इविडेंस बेस्ड मेडिसिन कहना चाहिए।

जब हम यह समझना शुरू करते हैं कि माडर्न शब्द का अर्थ कभी किसी स्थाई वस्तु या व्यवस्था से नहीं निकाला जा सकता, तब हम समझ पाते हैं कि आयुर्वेद और नयी साक्ष्य आधारित पद्धति में अंतर बहुत कम है। बल्कि कहना चाहिए कि दुनिया की पहली इविडेंस बेस्ड मेडिसिन प्रणाली आयुर्वेद ही थी। यह तब तक नहीं समझा जा सकता, जब तक हम हल्दी चूना लगाने को ही आयुर्वेद समझते रहेंगे।

आयुर्वेद कोई धार्मिक ग्रंथ नहीं है। बौद्ध प्रभाव से आयुर्वेद पर कई तरह के प्रतिबंधों की वजह से हिंदू राजाओं का आश्रय लेना प्राचीन आयुर्वेदिक चिकित्सकों की मजबूरी थी। पर संगठित धर्मानुसार हिंदू ने कभी आयुर्वेदिक चिकित्सकों को उनका समुचित स्थान, सम्मान नहीं दिया।

ऊपर जो कहा है कि आयुर्वेद विश्व की पहली इविडेंस आधारित चिकित्सा प्रणाली थी,वैसा कहने का आधार है सुश्रुत द्वारा विश्व में सबसे पहले किये गये शव परीक्षण और शल्य चिकित्सा के प्रयोग। आयुर्वेद के बहाने सुश्रुत को आज हिंदुत्व का प्रतिनिधि कहने वाले संभवतः नहीं जानते कि सुश्रुत कभी समाज में न रह सके, उन्हें शव परीक्षण के अपराध में शिष्यों सहित श्मशान में ही अथवा ग्राम की सीमा पर झोंपड़ी बना कर रहना पड़ा था।

भारतीय आयुर्वेद ने सातवीं शताब्दी में स्माल पॉक्स के लिए वैरियोलेशन की तकनीक प्रयोग में लाई थी। इस तकनीक में चमड़ी पर चीरा लगाकर स्मॉल पॉक्स के छालों का पानी सुखाकर बनाया चूर्ण छिड़का जाता था, जिससे शरीर में प्रतिरोधक क्षमता आ जाती थी। माडर्न इविडेंस बेस्ड मेडिसिन प्रणाली और आयुर्वेद में मात्र इतना अंतर है कि आयुर्वेद पर मठाधीशों ने कब्जा कर लिया और आधुनिक चिकित्सा प्रणाली सबके लिए उपलब्ध रही।

सुश्रुत और चरक को ईश्वर बनाकर स्थापित कर देने मात्र से अगर स्वास्थ्य सेवाएं बेहतर हो पातीं, तो किसी को भी क्या आपत्ति होगी? मगर अफसोस कि ऐसा होगा नहीं। आवश्यकता है सम्यक और सहयोगी अनुसंधान की, जिससे नये नये वायरस और बीमारियों पर विजय पाई जा सके, न कि दीमक लगी पोथियों या लोकोक्तियों के आधार पर 'मैं अच्छा, तू बुरा' की लड़ाई लड़ने की। जहां तक दोनो पद्धितियों में आर्थिक अंतर की बात है तो हमें समझना पड़ेगा कि जहां नये अनुसंधान हो रहे होंगे, जहां विश्व स्तरीय संसाधन जुटाये जायेंगे,जहां अधिक मैन पावर की जरूरत होगी, वहीं पैसा भी लगेगा। जहां सिर्फ मीठी बातों से काम चलाया जा रहा होगा, वहां क्या खर्च!

दूसरे अगर संस्थान या व्यक्ति जमाखोरी या भ्रष्टाचार कर रहा है, तो इसमें चिकित्सा प्रणाली दोषी कैसे हो गयी? प्राचीन महानता और धार्मिक उन्माद पर आधारित इस शोशेबाजी से आखिर किसका फायदा होगा? सामान्य जन का तो बिल्कुल फायदा नहीं है।

आज स्वास्थ्य सेवाओं को और अधिक मजबूत किये जाने की आवश्यकता है, जो इस तरह के विवादों से और कमजोर ही पड़ेंगी। आमूल चूल परिवर्तन न भी किया जा सके, तो कम से कम ढीले पड़े नट बोल्ट तो कसे जायें!

सरकारी सुविधाएं बढ़ाने की सख्त जरूरत है, पर केवल वेलफेयर स्टेट से भी काम नहीं चलता। इसके बुरे नतीजे विश्व के कई देश भुगत चुके हैं। सामाजिक बीमा आधारित सरकार द्वारा संचालित अस्पताल बढ़ाने चाहिए और सरकारी अस्पतालों और प्राइवेट अस्पतालों के बीच की दूरी पाटनी चाहिए। भारतीय चिकित्सा पद्धति पर पूरा ध्यान देना चाहिए, पर हम विश्व नागरिक भी हैं, यह भी याद रखना पड़ेगा।

सामान्य जनता को अपने अधिकारों के प्रति अवश्य सचेत होना चाहिए, पर अब समय है कि जनता अपने कर्तव्यों के प्रति भी चेते। हमारा सामान्य ज्ञान, तत्परता, सावधानी और सहसंवेदना ही हमें इन महामारियों के पार ले जा सकती है। ❑

सुन्दरलाल बहुगुणा

हिमालय-सा व्यक्तित्व था उनका

❑ रमेश चंद शर्मा

पर्यावरणविद सुंदरलाल बहुगुणा के अनेक प्रेरणास्रोत रहे। उनके वनाधिकारी पिता अंबाप्रसाद बहुगुणा का देहावसान उनके बचपन में ही हो गया था। गंगा के प्रति अगाध श्रद्धा उन्हें पिता से विरासत में मिली। मां पूर्णा देवी ने कड़ी मेहनत करके परिवार का पालन-पोषण किया। हिम्मत रखने, कष्टमय जीवन से न घबराने और परिश्रम करने का संस्कार मां से मिला। गांधीवादी और स्वतंत्रता सेनानी देव सुमन (सुमन जी के नाम से प्रसिद्ध) का उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उनको आजादी और गांधी विचार के बारे में उन्हीं से सीख मिली।

9 जनवरी,1927 को टिहरी के एक छोटे-से गांव मरोरा में जनमे बच्चे का नाम सुंदरलाल बहुगुणा रखा गया, जिसका बचपन बहुत ही संघर्षपूर्ण रहा। शिक्षा के लिए दूर-दूर जाना पड़ा- लाहौर, लायलपुर आदि। अनेक प्रकार के कष्ट झेलने पड़े। लिखने-पढ़ने का शौक बचपन से ही रहा। वे जितना जमीन से जुड़े रहे, उतना ही कलम से भी। ताउम्र हिमालय की सेवा साधना में सादगी, सरलता, सहजता, स्पष्टता, संवेदना, संकल्प, समझदारी, समर्पण से लगे रहे।

हिमालय में सक्रिय रहीं गांधीजी की शिष्या सरला बहन (जो अपने को विश्व नागरिक मानती थीं) की शिष्या विमला बहन के सुंदरलाल बहुगुणा के जीवन में आने के बाद इनके सोच- विचार और जीवन शैली में और भी प्रखरता आयी। विमला बहन ने जिस निष्ठा, भावना, समर्पण से जीवन भर साथ निभाया और उनका ध्यान रखा, ऐसे कम ही उदाहरण मिलते हैं। बहुगुणा जी के काम में विमला बहन का विशेष योगदान रहा।

21 मार्च, 2021 को देहरादून में दर्शनार्थ हुई मुलाकात बहुगुणा जी से अंतिम मुलाकात बन जाएगी, मैं इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता था। इस मुलाकात में उन्होंने एक कविता भी सुनाई। बहुत देर तक उनके आशीर्वचन प्राप्त हुए। वैसे हिमालय के साथ-साथ कई बार देश, विदेश में भी उनके दर्शन का लाभ मिला। अनेक बार सभा, सम्मेलन, बैठक, पदयात्रा, यात्रा, विभिन्न कार्यक्रमों में मिलने का सहज अवसर मिलता रहा।

एक प्रसंग याद आ रहा है। कुछ समय पूर्व भी एक बार देहरादून में बहुगुणा जी और विमला बहन के दर्शनार्थ गया था। बा-बापू के 150वें वर्ष पर अलीगढ़ से प्रकाशित 'हमारी धरती' का 'बा बापू 150' विशेषांक भेंट करके आनंद की अनुभूति हुई। यह खुशी और बढ़ गई, जब विमला बहन बहुगुणा ने इसमें लिखी सामग्री और प्रसंगों की चर्चा शुरू की। उन्होंने हमारी पोती आशी का नाम लेकर पूछा कि वह कैसी है। आयु के इस पड़ाव पर भी उनका स्वाध्याय जारी है, यह जानकर अच्छा लगा। नई पीढ़ी को इससे सीख मिल सकती है।

इस युगल के कितने ही प्रसंग हैं, जो यादों में घूम रहे हैं। टिहरी बांध परियोजना के खिलाफ हिमगंगा कुटी पर अनशन चल रहा था। हमने सपरिवार इसमें शामिल होने का तय किया। आंदोलन में शामिल तो हुए ही, साथ ही साथ क्षेत्र में भी जाने का कार्यक्रम बनाया और लोकजीवन विकास भारती, बूढ़ा केदार, बिहारी लाल भाई के क्षेत्र तक पहुंच गए। आंदोलन के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ साथियों से मिलने-जुलने का सुखद अनुभव भी हुआ।

उनका विश्वास था कि पेड़ काटे जाएंगे तो हिमालय की मृदा बहकर नदियों का स्वास्थ्य खराब करेगी। वर्षा की प्रक्रिया प्रभावित होगी। हिमालय में कटाव और भूस्खलन होंगे। हिमालय में जल संकट उत्पन्न होगा। हिमालय बंजर, उजाड़ बनेगा, प्राकृतिक आपदाओं का संकट आयेगा। हिमालय के साथ-साथ देश के बड़े हिस्से को समस्याओं का सामना करना पड़ेगा। ग्लेशियर प्रभावित होंगे, बहेंगे, टूटेंगे, पीछे जाएंगे, जो तबाही के कारण बनेंगे। नदियां प्रभावित होंगी।

सुंदरलाल जी ने बांधों के खिलाफ बात ही नहीं की, बल्कि समाधान भी प्रस्तुत किया कि हर खाले पर बहते पानी से बांधों की बनिस्पत ज्यादा बिजली प्राप्त की जा सकती है, वह भी बिना किसी खतरे के। बहुत कम खर्च में। हर गांव स्वावलंबी बन जाएगा। अनाज पीसने, तेल निकालने, लकड़ी चीरने, औजार आदि बनाने के लिए खराद भी चलाई जा सकती है।

शराबबंदी और छुआछूत का विरोध आदि सार्वजनिक-सामाजिक हित के अन्य मुद्दों से भी वह जुड़े रहे। चिपको आंदोलन के अलावा खदानों के खिलाफ, हिमालय बचाओ, बांधों का विरोध, नदियां बचाओ जैसे अनेक आंदोलनों में उन्होंने सक्रिय भूमिका निभाई। उन्होंने हिमालय में लंबी-लंबी पदयात्राएं कीं। एक गांव से दूसरे गांव, एक शहर से दूसरे शहर, एक जिले से दूसरे जिले, एक राज्य से दूसरे राज्य, एक पहाड़ी से दूसरी पहाड़ी चलते ही रहे। श्रीनगर, कश्मीर से कोहिमा, नगालैंड तक लगभग 5000 किलोमीटर की पदयात्रा डेढ़ साल से थोड़ा अधिक समय में पूरी की। कल्पना मात्र से ही मन कहीं-कहीं पहुंच जाता है। वे कहते थे कि पदयात्रा एक सशक्त माध्यम है जन-जन तक संदेश पहुंचाने, देश-दुनिया को जानने-समझने, सीखने-सिखाने का, जिसे पूरी तरह खुद पदयात्रा करके ही समझा जा सकता है। उनका मानना था कि यात्रा खुला शिक्षण-प्रशिक्षण संस्थान है।

उन्हें मिले पुरस्कारों की चर्चा करना मुझे अच्छा नहीं लग रहा। वे पुरस्कार से बहुत ऊपर उठ चुके थे। कुछ पुरस्कार लेने से तो उन्होंने खुद ही मना कर दिया। ऐसी ऊंचाई पर पहुंचा इंसान ही इतनी सादगी, सरलता, सहजता, स्पष्टता, संवेदना, संकल्प और समझदारी से जीवन जीने की हिम्मत रख सकता है। बच्चों, बड़ों, छात्रों, शिक्षकों, महिलाओं, पुरुषों, पढ़े-लिखों, अनपढ़, शहरी, ग्रामीण, कार्यकर्ता, अधिकारी, नेता, धार्मिक, राजनीतिक, किसी के भी बीच वे उसी सहजता व सरलता से अपनी बात रखते थे। जो लोग उनके इस स्वभाव से परिचित नहीं थे, उनको यह सब देखकर आश्चर्य होता था।

ऐसे व्यक्ति का जाना एक विशेष रिक्तता पैदा करता है। ❑

शेष नारायण सिंह : एक यायावर!

❑ राजेन्द्र शर्मा

शेष नारायण सिंह अचानक और असमय चले गए। परिजनों और मित्रों तथा चाहने वालों की विशाल संख्या को शोकाकुल छोड़ गए। हिंदी पत्रकारिता को, जिसमें खबरिया चैनलों की टीवी बहसें भी शामिल हैं, दरिद्र कर गए। और चार दशक से ज्यादा की प्यार और परस्पर सम्मान से गुलजार दोस्ती पर विराम लगाकर, मेरे जैसे दोस्तों को भीतर से खाली कर गए।

सुल्तानपुर में शिक्षक की अपनी नौकरी छोड़कर, सत्तर के दशक के उत्तरार्द्ध में शेष नारायण सिंह, बिना किसी हीले के जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय में आ पहुंचे और जम गए। उनके लिए इतना की काफी था कि जेएनयू में सुल्तानपुर के दूर-पास के कुछ परिचित मौजूद थे। जेएनयू उस जमाने में उत्तरी भारत के उभरते हुए बुद्धिजीवियों के लिए ऐसा ही चुम्बक बना हुआ था।

जेएनयू में उस जमाने में जैसे रिवाज ही था कि होस्टल की जगह को लेकर निजी संपत्तिभाव बहुत कम रहता था और नये आये छात्रों को खुला आतिथ्य मिलता था। संभवतः एक-दो दिन की गैरहाजिरी के बाद, होस्टल के अपने कमरे पर पहुंचा तो वहां, शेष नारायण सिंह जमे हुए थे। पता चला कि मित्र घनश्याम मिश्र ने उन्हें मेरे कमरे में टिका दिया था। तब से शुरू हुई हमारी दोस्ती, जिसमें राजनीतिक-वैचारिक दोस्ती का तत्व ही ज्यादा था, कभी क्षीण तो कभी वेगवान जरूर हुई, लेकिन एक सदानीरा की तरह इन तमाम दशकों में उसमें तरलता बराबर बनी रही।

यह वह जमाना था, जब पढ़ाई-लिखाई और सामाजिक-राजनीतिक सक्रियता, निजी कैरियर की चिंता के लिए बहुत कम जगह छोड़ती थी। वह अचानक भाषा इंडोनेशिया के छात्र हो गए। फिर कुछ और। यह सबसे पहले ज्ञानार्जन का समय था, बाकी सब बाद में आता था।

शेष नारायण ने उस जमाने में मार्क्सवाद की कितनी ही किताबें मुझसे लेकर पढ़ी होंगी और कुछ तो लौटाई भी नहीं होंगी। एक किताब तो दसियों साल बाद, जब मैं शेष नारायण की किसी अस्वस्थता के चलते हाल जानने के लिए उनके घर पर गया था, साथ ले जाने के लिए मैंने उठा भी ली थी, लेकिन शेष नारायण की इस हास्यमिश्रित दलील ने मुझे निरुत्तर कर दिया था कि छोड़ दो, बच्चे क्या कहेंगे? अंकल दोस्त को देखने नहीं, किताब लेने आए हैं! किताब वहीं की वहीं रखी रह गयी।

पर जेएनयू का सपना भी एक दिन तो खत्म होना ही था। मैं लोक लहर में चला आया। शेष नारायण ने भी समझ लिया कि

परिवार की जिम्मेदारियों का बोझ और नहीं टाला जा सकता है। रोजी-रोटी के लिए वह अचानक सेल्स प्रतिनिधि के काम पर हाथ आजमाने के लिए भी तैयार हो गए। एक विचारवान व्यक्ति के लिए यह बेशक एक मुश्किल तजुर्बा था। शायद यह चरण ज्यादा चला भी नहीं। जल्द ही शेष नारायण पत्रकारिता की दुनिया में आ गए, जिसके लिए इतिहास की उनकी पढ़ाई और जेएनयू की पढ़ाई के योग ने, उन्हें बखूबी तैयार कर दिया था।

राष्ट्रीय सहारा में संपादन की जिम्मेदारी संभालने के बाद, फिर शेष नारायण ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। अपने विशद अनुभव, पैनी विश्लेषण क्षमता और भाषा पर अपनी गहरी पकड़ से, उन्होंने हिंदी पत्रकारिता में अपनी पुख्ता जगह बनायी। एनडीटीवी से होते हुए उन्होंने टेलीविजन पर राजनीतिक-सामाजिक विश्लेषकों में भी अपनी महत्वपूर्ण जगह बनायी।

पिछले कुछ वर्षों से बड़े आदर के साथ उनका परिचय एक 'वरिष्ठ पत्रकार, स्तंभकार और राजनीतिक विश्लेषक' का बना हुआ था। सत्तर के दशक के जेएनयू में पुख्ता हुई धर्मनिरपेक्षता, जनतंत्र और बराबरी की अपनी निष्ठाओं को उन्होंने कभी नहीं छोड़ा।

शेष नारायण सिंह के संबंधों और संपर्कों का दायरा इतना बड़ा था कि मेरे जैसे लोग उस पर हैरान ही हो सकते हैं। प्रधानमंत्री, रक्षा मंत्री, उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश के पूर्व-मुख्यमंत्री के उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करने से, इस दायरे की विशदता तथा संबंधों की ताकत का कुछ अंदाजा लगाया जा सकता है। बेशक, वह संबंधों व संपर्कों को सहेजना जानते थे। लेकिन, इससे भी महत्वपूर्ण था, उनका संबंधों को बड़ी निश्छलता से जीना। पुराने मित्रों के साथ ही नहीं, नये संपर्क में आने वालों के साथ भी और मित्रों के सभी परिवारीजनों के साथ भी, शेष नारायण बराबरी का बर्ताव करते थे। और किसी की जरूरत का जरा सा पता लगते ही, मदद के लिए तैयार रहते थे। स्वाभाविक ही है कि जेएनयू के सत्तर के दशक के मित्रों के बारे में, ताजा अपडेट के लिए, शेष नारायण सबसे विश्वसनीय स्रोत थे।

शेष नारायण की जितनी जीवन यात्रा का मैं साक्षी हूं, उसमें मुझे एक यायावर दिखाई देता है, ज्ञान की अनथक खोज में भटकता हुआ। मुझे शेष नारायण से कोई ऐसी मुलाकात याद नहीं है, जिसमें वह कोई किताब नहीं लिए रहे हों या किसी किताब की तलाश में नहीं रहे हों।

आखिर में, मैंने शेष नारायण का देशबंधु से पत्रकारीय परिचय कराया था और शेष नारायण ने उससे मेरा लेखकीय परिचय। देशबंधु से इसके बाद उन्होंने जीवन भर यह रिश्ता निभाया। कोशिश होगी मैं भी निभा सकूं।

-हस्तक्षेप

गांधी गीतों के गायक : भवानी प्रसाद मिश्र

❑ नारायण देसाई

कल तक जिन्हें आप ढंग से पहचानते भी न हों और वे आपके चिर-परिचित परिवारजन बन जाएं, आप जीवन में ऐसे कितने लोगों से मिले हैं? हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि भवानी प्रसाद मिश्र की बाबत मेरे साथ ऐसा ही हुआ था। हमेशा की अपनी भागमभाग में शहर (वाराणसी) के बाहर गया हुआ था। वाराणसी लौटा तब उत्तरा ने बताया 'भवानी बाबू आए हैं। टिके तो मेहमान-घर में हैं, लेकिन बच्चों के आग्रह पर हमारे घर भोजन करना स्वीकार किया है। अभी चाय के वक्त आ पहुंचेगे।' तभी, 'दीदी, मैं पहुंच गया हूँ। कहते हुए भवानी बाबू आ पहुंचे। हम दोनों उन से दस बरस छोटे तो होंगे ही, परन्तु उन्होंने उत्तरा को 'दीदी' कहने का संबंध बना लिया था।

भवानी बाबू के विषय में बहुत सुन रखा था, किन्तु निकट आने का संयोग ही नहीं बना था। वैसे हम दोनों ही वर्धा-परिवार के थे, परन्तु एक दूजे के परिवार के बने, वाराणसी में ही। जब वे वर्धा के महिला आश्रम में थे, तब मैं वहां न था। जब मैं वहा था, तब वे न थे। अनेक मित्रों से उनके बारे में सुना था। परन्तु उनकी स्नेहमयी दृष्टि में सरोबार होने का यह पहला मौका था। सर्व सेवा संघ के प्रकाशन के काम से वे ही वाराणसी आए होंगे, किन्तु इस काम से इतर बतियाने के हमारे बीच पर्याप्त विषय थे। उनकी हिन्दी साहित्य की दुनिया के अलावा पहली बात तो यह थी कि उनकी और मेरी दुनिया समूची एक ही थी। उसमें भी हम दोनों के प्रिय विषय थे-बापू। फिर प्रथम परिचय का संकोच कितनी देर टिका रहता!

एक शाम मेरे दामाद ने कहा कि भवानी बाबू को सुनना है- थकान के बावजूद हजारों की मेदिनी को मंत्रमुग्ध कर देने वाले भवानी बाबू कुटुंब के दो चार लोगों के समक्ष कविता पाठ करने के लिए तैयार हो गए। 'भला बेटी दामाद कहें तो मैं कैसे इनकार करूँ?'

भवानी बाबू एक बार शुरू करें, फिर उन्हें दूसरी कविता सुनाने का आग्रह करने की जरूरत नहीं पड़ती थी। एक के बाद दूसरी कविता निकलती जाती थी, पंचतंत्र की कथाओं की भांति। कई बार तो एक कविता कब पूरी हुई और दूसरी कब शुरू हुई, इसका श्रोता को भान ही नहीं रहता। मेघाणी भाई (गुजराती के प्रख्यात कवि झवेरचंद मेघाणी) के अलावा इतनी अधिक स्वरचित रचनाओं को कंठस्थ रखने वाले किसी अन्य कवि से मैं तो कभी नहीं मिला। जब वे काव्य-पाठ करते, तब मानो श्रोता उन पर उपकार कर रहे हों, वैसी कृतज्ञ दृष्टि से उन्हें देख रहे होते थे। परन्तु ज्यों-ज्यों गीतों में वे गहरे उतरते, त्यों-त्यों उनका पाठ स्वान्तः

सुखाय होता जाता। बावजूद इसके श्रोताओं को भी वे सरोबार कर देते थे। कई बार तो उनका छंद श्रोताओं को साथ गाने की प्रेरणा दे जाता था।

चलो गीत गाओ, चलो गीत गाओ।
कि गा गा के दुनिया को सर पर उठाओ।
अभागों की टोली अगर गा उठेगी
तो दुनिया पे दहशत बड़ी छा उठेगी
सुरा-बेसुरा कुछ न सोचेंगे गाओ,
कि जैसा भी सुर पास में है चढ़ाओ।
अगर गा न पाये तो हल्ला करेंगे
इस हल्ले में मौत आ गयी तो मरेंगे
कई बार मरने से जीना बुरा है
कि गुस्से को हर बार पीना बुरा है
बुरी जिन्दगी को न अपनी बचाओ,
कि इज्जत के पैरों पे इसको चढ़ाओ।

मुझे मालूम था कि भवानी बाबू पर एकाधिक बार हृदय रोग का आघात हो चुका था। 'गतिसाधक' (पेसमेकर) भी लगाया गया था। अतएव मैंने अधिक गाने का आग्रह न करने के लिए बच्चों को समझाया। इस पर वे ही बोले ''गाने के बल पर ही तो मैं जी रहा हूँ। उसमें थकान का प्रश्न ही कहां?''

एक सुगंध के बल पर
जी रहा हूं मैं
सुगंध यह कदाचित
गर्भ में समझे हुए
परिवेशों की है –
छूटे घने केशों की है
और इतनी घनी है
कि धूल और धुएं के बीच
जैसी की तैसी बनी है
बरसों से मैं
धूल और धुएं के शहरों में हूं
लगता है मगर
कमल और पारिजात की
बहती हुई बहारों में हूं...

इन आदिम सुगंधों को पीते-पीते भवानी बाबू जीये। जीये यानि जीवन का क्षण-क्षण जीये। सात-सात बार उन पर हृदय रोग का आघात हुआ। परन्तु खुद तो मानो मरणोत्तर जीवन जी रहे हों, वैसी मस्ती में थे 'अरे भाई, मैं तो किसी दूसरी बीमारी के लिए अस्पताल में पड़ा था, तभी मुझ पर हृदय रोग का पहला हमला हुआ। डॉक्टर भी न समझे और मैं भी।' परन्तु फिर मानो नया जन्म लिया हो, वैसी ताजगी महसूस की। हफ्ते भर के सहवास से भवानी बाबू हमारे परिवार के सदस्य ही बन गए। कुटुम्ब के हर सदस्य को लगा कि उसका उनके साथ खास संबंध है। मेरा पौत्र सुकरात पढ़ना सीख ही रहा था, तब दिल्ली में उससे हुई पहली मुलाकात में उन्होंने उस पर मोहिनी

फेर दी थी। खुद कविता सुनाते जा रहे थे। इतनी बार सुनाई कि सुकरात को बिना पढ़े ही बोलनी आ गई। हम उन्हें परिवार के नाम से – मन्ना जी कह कर संबोधित करते। परन्तु प्रथम मुलाकात में कविता सुनकर सुकरात ने पूछा, 'आपका नाम?' उन्होंने कहा, भवानी प्रसाद। उनके घर से निकलते वक्त सुकरात ने पूरे सम्मान के साथ कहा 'भवानी प्रसाद तो कवि हैं? मुझे लगता है कि जीवन में मिले, अथवा छोड़ दिए गए पुरस्कारों की तुलना में भवानी बाबू के मन में सुकरात के दिए इस प्रमाण पत्र की कीमत कम नहीं थी।

भवानी बाबू एक ओर कवि हृदय थे तो दूसरी ओर दुनियादार भी। इसीलिए उनके घर पर हमेशा मेहमानों का तांता लगा रहता था। सरला भाभी और परिवार के अन्य लोगों को इससे कठिनाई होती होगी। परन्तु सरला भाभी ने कभी इसे प्रकट नहीं होने दिया। मन्नाजी के मन को जो भाता था, वही उन्हें भी भाता था। भवानी बाबू परिवार में सबसे बड़े भाई न थे, फिर भी परिवार के लोग किसी भी मुसीबत में उन्हीं के पास दौड़े आते। खुद से बेहतर स्थिति वालों की भी सहायता किए बिना भवानी बाबू नहीं रह पाते। कई बार तो वह यह भी जान रहे होते थे कि उन्हे ठगने की कोशिश हो रही है। जब कोई जान-बूझकर ठगा रहा हो, तब उसे कौन ठग सकता है? स्वयं कभी गलत खर्च नहीं करते थे, परन्तु जिसकी मदद कर दी, उससे कभी हिसाब नहीं मांगते।

खुद के परिवारजनों के प्रति भवानी बाबू अत्यन्त ममत्व का भाव रखते थे। जेल में बैठे-बैठे कुटुंबीजनों के लिए कविता लिखने अथवा हृदय रोग के हमले के बाद भी रोज मुगदर फेरने की आदत न छोड़ने वाले पिता का स्मरण कर वे फफक-फफक कर रो पड़ते।

एक बार आर्थिक कठिनाइयों की वजह से भवानी बाबू को फिल्मों के लिए गीत लिखने पड़े थे। इसका कष्ट उन्हें ताउम्र रहा। इस वेदना को उन्होंने अपनी 'गीत फरोश' नामक कविता में उलीचा था तथा यह कविता लाचारीवश गीत लिखने वाले कितने ही कवियों के मन की चीख पुकार बन गई थी।

आजादी के बाद भवानी बाबू अधिकतर दिल्ली की 'धूल और धुएं के बीच' शहर में रहे। परन्तु देश के कल्याण की कामना ने उन्हें कभी दिल्ली की माया में फंसने नहीं दिया। यूँ बड़े लोगों के साथ जान-पहचान की कमी न थी। गांधी, विनोबा, नेहरू जैसों के साथ उनका परिचय था। बजाज कुटुम्ब के साथ घरोपा था। श्रीमन्नारायण तो उनके मुक्त प्रशंसक थे, परन्तु इनसे पहचान का खुद कभी लाभ नहीं लिया। विचारों से भवानी बाबू सच्चे गांधीवादी थे, मगर उनका कवि हृदय किसी वाद के खांचे में समा जाए, ऐसा न था। इसीलिए वे गांधीवादी कवि बनने के बदले मानववादी कवि बने रहे। उनकी कविता घरेलू विषयों से लगायत आध्यात्मिकता के शिखरों तक का भ्रमण करती है। उन्हें ऐहिक सुख की परवाह न थी। वे कहते 'सुख अगर मेरे घर में आ जाए, तो उसे बैठायेंगे कहां? उनकी मस्ती देख 'होगा चकित' की अवस्था बन जाती थी।

हिन्दी में आत्मा शब्द का प्रयोग स्त्रीलिंग में होता है। आत्मा से भवानी बाबू कहते है –

सुनती हो मेरी बहन आत्मा!
किसी नदी के हरहराने जैसी यह आवाज!
यह रगों में दौड़ता हुआ मेरा खून है।
मेरा खून,
जिसमें मेरी खुशी डूब गयी है
और मन का रक्त-कमल जिसमें
दिन-भर भी खिला नहीं रह सका है।
शायद मेरी रगों में यह खून
इसी शर्त पर बह रहा है
कि खुशियां डुबाई जायेंगी,
बिखराये जायेंगे दल रक्त-कमल के
शाम आने के भी पहले।
बता सकती हो तुम
मेरी बहन आत्मा कि कहीं
तट भी हैं इस नदी के या नहीं?...

स्वराज के बाद का भारत जिस तरह गांधी के दिखाए मार्ग से विचलित हुआ, उससे भवानी बाबू का हृदय टीस उठता।

लेकिन भवानी बाबू जिस आध्यात्मिक पीठ पर आसीन थे, उसने उन्हें कभी निराशा में डूबने नहीं दिया। जैसे सात-सात बार मौत से वे लड़े, वैसे ही आजादी के पहले गुलामी से लड़े और आजादी के बाद तानाशाही से भी लड़े। आपातकाल में जब मैंने 'यकीन' नामक हिन्दी पत्रिका शुरू की, तब मेरे एक ही पत्र के जवाब में उन्होंने ढेर सारी कविताएं भेज दीं। उस समय दिल्ली में भय का साम्राज्य था। खास तौर पर बौद्धिक वर्ग भयभीत था। जीवन के आदर्शों और मूल्यों के लिए जो खुद को घिसने के लिए तैयार नहीं होते, उन्हें भीरु ही बनना पड़ता है। उन्हीं दिनों कई बौद्धिक मित्रों ने भवानी बाबू को यह सयानी सलाह दी थी– 'कविता भेजी ही हो तो कम से कम यह सावधानी बरतिएगा कि उसके साथ आपका नाम न छपे।' नाम की कभी चाह न रखने वाले ऐसे प्रसंगों में नाम देने के लिए उत्साहित नहीं होते हैं।

चंडीगढ़ से बीमारी के कारण पैरोल पर छूटे जय प्रकाश जी ने उनसे सहज ही पूछा– आज कल क्या कर रहे हैं? कवि का और क्या जबाव हो सकता था? उन्होंने कहा, 'कविता लिखता हूँ।' पूरे आपातकाल रोज तीन-तीन कविताएं लिखते रहे, जो बाद में 'त्रिकाल संध्या' के नाम से प्रकाशित हुई। बच्चों की एक पत्रिका ने आपातकाल के दौरान भवानी बाबू से उनकी रचना मांगी। उन्होंने मुक्त अभिव्यक्ति पर एक सरल कविता लिखकर भेज दी, फिर ख्याल आया कि कदाचित संपादक महोदय के लिए ऐसी कविता को कबूलना कठिन हो जाए। इसलिए उस कविता के नीचे ही सम्मानपूर्वक लिख दिया—'छापने योग्य लगे, तब ही छापिएगा। अयोग्य लगे तो, लौटाने की जरूरत नहीं है। घर के बच्चे लौटाई गई कविता देखेंगे तो मेरे बारे में क्या सोचेंगे? 'गांधी पंचशती' नामक संग्रह में गांधी विचार को केन्द्र में रखकर लिखी गई उनकी पांच सौ कविताएं संकलित है। दिल्ली में उनके राजघाट स्थित घर में पहली बार गया, तब प्रेमपूर्वक परोस कर भोजन कराया और जाते वक्त मेरे हाथ में उस पुस्तक की एक प्रति रख दी। पहले पन्ने पर लिखा था 'प्रिय भाई नारायण देसाई को, पहली बार घर आने के प्रसंग से सुख पाकर।'' पुस्तक की प्रारम्भिक कविता में आज के युग की पीड़ा है। इस युग को बदलने की उनकी आशा को चरितार्थ करने में यह कविता साधक बनेगी, ऐसी उनकी आस्था थी। इस आस्था के लिए

खुद से बन पड़ने लायक सबकुछ कर गुजरने की छटपटाहट उनमें प्रकट होती है। इस लम्बी कविता के कुछ भाग देखें।

कविताएं ये ज्यादातर उस भविष्य की हैं,
जो वर्तमान हुआ था।
जिसने हमें कण-कण,
पोर-पोर छुआ था।
मगर किसी झंझट में हमने
जाना अनजाना कर दिया उसे,
यह कोई भविष्यवाणी नहीं है,
न सपना है,
इसे गांधी ने खुली आखों से देखा था।
और एक हद तक
साकार करवाया था हमसे।
इसलिए तो हमारा है, अपना है,
बेहतर दुनिया की
एक तस्वीर खिंचती है इसमें।
लगभग अब तक की बंजर,
समूची एक दुनिया सिंचती है इसमें।...

भवानी बाबू के विशाल साहित्य में मेरा सम्पर्क उनके गांधी साहित्य के साथ ही अधिक था। ऊपर दिए उदाहरण में हम देख सकते हैं कि उनकी भाषा भी, गांधी जैसी चाहते थे, वैसी सीधी-सादी, सरल हिन्दुस्तानी ही थी। वे उस जमाने में लिख रहे थे, जब बड़े-बड़े साहित्यकार हिन्दी भाषा से चुन चुन कर उर्दू शब्द निकाल देते थे। भाषा को कठिन और क्लिष्ट बनाने में मानो पांडित्य प्रकट होता हो। ऐसे वक्त में भवानी बाबू ने आदर्श रखा—

जिस तरह हम बोलते हैं,
उस तरह तू लिख।
और इसके बाद भी हम से बड़ा तू दिख।

भवानी बाबू सामान्य जन के थे। इसलिए सामान्य जन की बात वे प्रथम पुरुष में सहजता से कहते। इसके बावजूद सामान्य जनों को असामान्य ऊँचाई तक उठा सकने की ताकत उनकी भाषा में थी। जीवन के आखिरी वर्ष उन्होंने दिल्ली में बिताए। संयोगों ने उन्हें दिल्ली लाकर बसा दिया था, परन्तु उनकी आत्मा थी देहात में, जहां गांधी ने असली भारत देखा था। 'दुर्घटना' नामक एक कविता में वे लिखते हैं –

मुझे अपने गांव में रहना था,
वहां की धूल, कीचड़, धुआं सहना था।
यह ठीक नहीं हुआ कि छोड़कर
वह कीचड़, धूल और धुआं,
मैं यहां आ गया दीद ओ दानिश्त;
धोखा खा गया।
फाइलों की धूल,
दोस्तों का उछाला हुआ कीचड़,
बसों का धुआं :
ना, यह ठीक नहीं हुआ।
मुझे अपने गांव में रहना था,
वहां का धुआं, धूल, कीचड़ सहना था।
भाग्य मुझ पर भले उखड़ा था,
मगर मेरे पास जमीन का टुकड़ा था।
घर था, घर की शाक-सब्जी थी,
अन्न था;
हाय दिमाग कैसा सन्न था,
कि मैं यहां आ गया।
दीद ओ दानिश्त; धोखा खा गया!

इस धोखे से छूटने के लिए ही मानो जीवन के अन्तिम क्षणों में मध्य प्रदेश के अपने मूल गांव नरसिंहपुर में बिताकर हमारे निमंत्रण पर वे वेड़छी आकर कुछ दिन रहे। दो-चार कक्षाएं ली थीं, दर्जन-दो दर्जन कविताएं सुनाई थीं, वेड़छी आश्रम में घटादार वृक्षों पर आकर बैठने वाले तथा सांझ-सबेरे वैतालिक गान गाते विहंगों पर वे लट्टू थे। एक दिन आश्रम का एक विद्यार्थी मुख्य मेहमान को प्रार्थना के लिए बुलाने आया तो कह दिया–'भाई, मुझे माफ करना। मैं तो इन पंछियों की प्रार्थना सुन रहा हूं, बरसों बाद ऐसी प्रार्थना में शरीक होने का मौका मिला है। मुझे यह प्रार्थना ही करने दो।'

जाते वक्त मुझे छाती से भींच कर बोले, 'भाई, आप तो बनारस से फिर गांव में आ गए। मेरी भी यही इच्छा है कि दिल्ली से फिर नरसिंहपुर चला जाऊं। मेरा जी वहीं लगता है। वहीं जन्मा था, वहीं मरना चाहता हूँ। सचमुच वैसा ही हुआ। गए तो थे कुटुंबीजन के विवाह में। वहीं रूक गए, संक्षिप्त बीमारी भोग कर विदा हो गए। आजीवन सहधर्मचारिणी सरला भाभी ने कहा 'मृत देह को दिल्ली लाने की आवश्यकता नहीं है। बावजूद इसके कि पूरा कुटुम्ब दिल्ली में ही था। सब काम वहीं होगा। ज्यादा लोगों को दिल्ली से नरसिंहपुर भी जाने की जरूरत नहीं है। '

भवानी बाबू के परिवार में मेरा सबसे अधिक परिचय उनके छोटे बेटे अनुपम के साथ है। गांधी शांति प्रतिष्ठान के पर्यावरण विभाग में सुन्दर काम कर रहा है। प्रतिभा और स्वभाव से मोर का अंडा है, उसने लिखा 'हम सब हिम्मत बांधे हुए है। बस आप जैसे किसी का पत्र पढ़कर बांध टूट जाता है। पिताजी हमें बहुत बड़े परिवार में छोड़ गए।

(मूल गुजराती से हिन्दी अनुवाद-
अफलातून)

चंडीगढ़ में 'गांधी दर्शन एवं युवा' गोष्ठी

गांधी स्मारक निधि पंजाब, हरियाणा व हिमाचल की ओर से 'गांधी दर्शन एवं युवा' विषय पर एक गोष्ठी 3 अप्रैल 2021 को चंडीगढ़ में आयोजित की गई। इस गोष्ठी में मुख्य वक्ता अमरनाथ भाई थे।

अमरनाथ भाई ने युवा शक्ति के आगे अपने विचार रखते हुए कहा कि आज हमारे सामने बहुत सी चुनौतियां हैं। उनका सामना आज के युवा को करना है। उन्हें अपने रहने लायक समाज का निर्माण स्वयं करना है। आज विज्ञान ने दुनिया को छोटा कर दिया है। इसी विज्ञान ने माचिस या चाकू बनाया। इनका प्रयोग रसोई में खाना बनाने, आग जलाने तथा सब्जी काटने के लिए हो सकता है तथा इसका दुरुपयोग घर जलाने के अलावा किसी को मारने में भी हो सकता है। विज्ञान के साथ अध्यात्म को जोड़कर हम एक सुखमय समाज बना सकते हैं। इसलिए इनका समन्वय आवश्यक है।

इस अवसर पर देवराज त्यागी ने कहा कि गांधी एवं विनोबा जी के विचार समाज को आइना दिखाते हैं। हमें उनको दिल से अपनाना चाहिए। डॉ. एम. पी. डोगरा ने सभी लोगों का धन्यवाद किया तथा कहा कि आज के युवा को नकली दौड़ में न पड़ कर सच्चा जीवन जीना चाहिए। गोष्ठी में डॉ. सरिता मेहता, भवन स्टाफ एवं पुस्तकालय में पढ़ने वाले समस्त छात्र-छात्राओं ने भाग लिया।

-देवराज त्यागी

हिन्दुत्व की परिभाषा

❑ अज्ञेय

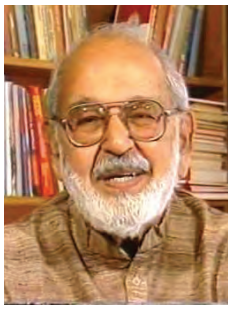

मध्यावधि चुनाव ज्यों-ज्यों निकटतर आते जा रहे हैं और राजनैतिक दलों की सरगर्मियां बढ़ रही हैं, त्यों-त्यों एक और प्रवृत्ति भी अधिक साफ़ उभर कर आ रही है, जिससे लगता है कि आज़ादी के बीस बरस या आधुनिक राजनैतिक आंदोलन के सौ बरस में तो क्या, हमने हज़ार बरस के इतिहास में भी बहुत कम सीखा है, या सीखा है तो केवल नया तंत्रकौशल पुरानी मनोवृत्तियों की पुष्टि के लिए. कोई भी चुनाव सांप्रदायिक अथवा जातिगत चिंतन से मुक्त नहीं रहा है, प्रत्येक में ऐसे फिरकेवाराना स्वार्थों को उभार कर या उनकी दुहाई देकर वोट पाने का प्रयत्न किया गया है. फिर भी राजनैतिक लक्ष्यों के प्रति लगाव भी रहा है, जो प्रत्येक चुनाव में कमतर होता गया जान पड़ता है. इनमें वह प्रवृत्ति प्रधान है, जो धर्म-मत की दुहाई देकर संकीर्णता और वैमनस्य को उभारती है. फ़रीदी साहब की मुस्लिम मजलिस भी यह करती है और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ भी; और इससे बहुत अधिक फ़र्क नहीं पड़ता कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के नेता कुछ ऐसी बातें भी कहते हैं, जो अधिक आदर्शोन्मुख जान पड़ती हैं, या कि उनका संगठन अधिक व्यापक और अनुशासित है.

दोनों संगठन, जैसा कि अन्य संगठन, अपने को 'शुद्ध सांस्कृतिक कार्य' में लगे बताते हैं; स्वयं इस बात की अनदेखी करते हुए (और दूसरों को कदाचित् इतना बुद्धू समझते हुए?) कि यह पिछले विश्वयुद्ध से ही साबित हो चुका है कि संस्कृति को राजनीति का एक कारगर हथियार बनाया जा सकता है और आज संसार की सभी बड़ी शक्तियां ठीक इसी काम में लगी हैं। कोई भी किसी अच्छे उद्देश्य से नहीं लगा है, अगर ख़ालिस सत्ता की दौड़ ही 'अच्छा उद्देश्य' नहीं है!

संस्कृति का नाम लेकर लोगों को अधिक आसानी से भड़काया और बरगलाया जा सकता है, तो ऐसा 'सांस्कृतिक' कार्य स्पष्ट आत्मस्वीकारी 'राजनैतिक' कार्य से अधिक ख़तरनाक होता है. फ़रीदी साहब ने कहीं यह भी कहा कि उनका संगठन 'अल्पसंख्यकों' की सांस्कृतिक उन्नति का काम करता है और यह भी कि अगर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अपनी सरगर्मियां बंद कर दे, तो वह भी अपना काम बंद कर देंगे. क्यों? क्या राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के निष्क्रिय हो जाने से अल्पसंख्यकों को भी 'संस्कृति' की आवश्यकता न रहेगी?

मुस्लिम मजलिस की कार्रवाइयों और मनोवृत्ति की हम भर्त्सना करते हैं. बिना किसी लाग-लपेट के हम उसे संकीर्ण, समाजविरोधी और राष्ट्रीयता के विकास में बाधक मानते हैं. उसकी कार्रवाई बंद करने की बात के साथ कोई शर्त हो, यह हम ठीक नहीं समझते क्योंकि वह काम हर अवस्था में ग़लत है.

क्योंकि हम ऐसा कहते हैं, इसलिए हम यह भी मानते हैं कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अनुशासन के मूल में भी वही दूषित, संकीर्ण और कठमुल्लई मनोवृत्ति है, और वह भी एक लौकिक भारतीय समाज और खरी राष्ट्रीयता के विकास में उतनी ही बाधक होगी, बल्कि इसलिए कुछ अधिक ही कि वह बहुसंख्यक वर्ग का संगठन है. इन पंक्तियों के लेखक को अपने को हिंदू मानने में न केवल संकोच नहीं है, वरन् वह इस पर गर्व भी करता है; क्योंकि इस नाते वह मानव की श्रेष्ठ उपलब्धियों के एक विशाल पुंज का उत्तराधिकारी होता है. उस संपत्ति को वह खोने, बिखरने या नष्ट होने देना या उसका प्रत्याख्यान करना नहीं चाहता. इसके बावजूद वह और वैसा ही सोचने वाले अनेक प्रबुद्धचेता हिंदू राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की सरगर्मियों को अहितकर मानते हैं तो इसलिए नहीं कि वे हिंदू-द्वेषी या हिंदू धर्म-द्वेषी हैं, वरन् इसलिए कि वे हिंदू हैं और हिन्दू बने रहना चाहते हैं. संघ का ऐब यह नहीं है कि वह 'हिंदू' है; ऐब यह है कि वह हिंदुत्व को संकीर्ण और द्वेषमूलक रूप देकर उसका अहित करता है, उसके हज़ारों वर्ष के अर्जन को स्खलित करता है, सार्वभौम सत्यों को तोड़-मरोड़ कर देशज या प्रदेशज रूप देना चाहता है, यानी झूठा कर देना चाहता है.

जिस दाय की बात हम कर रहे हैं, वास्तव में 'हिंदू' नाम उसके लिए छोटा पड़ता है: वह नाम न उतना पुराना है, न उतना व्यापक अर्थ रखने वाला, न उसके द्वारा स्वयं चुना हुआ. यह उत्तर मध्यकाल की और इस्लाम से साक्षात्कार की देन है. इसके बोध से ही आर्य समाज में यह भावना प्रकट हुई थी कि अपने को हिंदू न कह कर 'आर्य' कहें। हिंदू धर्म आर्य धर्म की एक परवर्ती शाखा भर था.

किसी वस्तु को चाहे जिसने, चाहे जब नाम दिया, महत्त्व वस्तु का ही है. उसके बारे में इस आधार पर भेद करना कि कौन 'इसी मिट्टी में' उपजी, कौन बाहर से आई, गलत है. हिंदू या आर्य धर्म की मूल संपत्ति का–ऋग्वेद का–एक महत्त्वपूर्ण अंश ऐसे प्रदेश की देन है, जो न अब भारत का अंग है, न अतीत में समूचा कभी रहा. किसी के मन में यह भ्रांत कल्पना हो भी सकती है कि पाकिस्तान आखिर भारत ही है और फिर उसमें आ मिलेगा। पर महाभारत के या गुप्तों के समय का गांधार जो आज अफ़गानिस्तान है, क्या उसे भी भारत में मिलाने का कोई स्वप्न देखता है? या ईरान के भाग को? अगर हां, तो उसकी बुद्धि को क्या कहा जाए? अगर नहीं, तो इस 'देशज धर्म' वाले तर्क का क्या अर्थ रह जाता है? वेदों के अधिभाग को हम इसलिए अमान्य कर दें कि वह उस भूमि पर नहीं बना जो भारत है? क्यों? क्या सत्य इसलिए अग्राह्य होगा कि वह अमुक मिट्टी का नहीं है? तब सार्वभौम सत्य क्या होता है? और समूचे आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का हम क्या करेंगे? कि सब अग्राह्य है क्योंकि इस मिट्टी की उपज नहीं है?

और फिर उसका हम (और दूसरे) क्या करेंगे, जो यहां पैदा हुआ और अन्यत्र गया? क्या हम इसका समर्थन करेंगे कि श्रीलंका, बर्मा, तिब्बत, नेपाल, लाओस, कंबोडिया आदि बौद्ध धर्म को खदेड़ कर भारत भेज दें, क्योंकि वह उन देशों की उपज नहीं है? शायद हम कहेंगे कि सिंहली या भोट बौद्ध धर्म अलग है, इसका स्वतंत्र विकास हुआ है. पर एक तो मूल वही रहेगा, दूसरे क्या इस्लाम का स्वतंत्र विकास भारत में नहीं हुआ? क्या हिंदुस्तानी मुसलमान, अरबी या ईरानी मुसलमान से उतना ही भिन्न नहीं है, जितना सिंहली बौद्ध हिंदुस्तानी बौद्ध से?

नहीं, ऐसी 'देशज' अंधता को हम राष्ट्रीयता नहीं मान सकते; न हम हिंदुत्व पर इस नाते गर्व करते हैं कि वह इस मिट्टी की देन है, बल्कि मिट्टी पर इसलिए गर्व कर सकते हैं कि उसमें ऐसे सत्य उपजे जो सार्वभौम हैं. एक हिंदू धर्म ने ही धर्म-विश्वासों और धर्म मतों से ऊपर आचरित धर्म को, सार्वभौम सत्य के अनुकूल आचरण को महत्त्व दिया. अन्य धर्मों के उदारतर पक्ष अब उस आदर्श की ओर बढ़ रहे हैं और उसी में मानव मात्र के भविष्य की उज्ज्वल संभावनाएं हैं। *('दिनमान' 8 दिसंबर 1968 का संपादकीय)*

गतांक से आगे...

गांधी, पटेल, सुभाष

भारतीय राजनीति का हालिया आख्यान

❑ प्रियंवद

सुबह तार मिला। सिलहट से यात्रा के दौरान मौलाना और सुभाष के वक्तव्य पढ़े। मेरे विचार में मौलाना के हटने पर डॉ. पट्टाभि को वह पद देना अनुचित है। आगामी वर्ष सन् 1937 की तुलना में हर दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण व असाधारण है। मेरा दृढ़ मत है कि कार्यसमिति के किसी सदस्य को सहयोगियों के चयन में पक्षपात नहीं करना चाहिए...डॉ. पट्टाभि—आने वाले संघर्ष में देश के आत्मविश्वास को प्रेरित नहीं करेंगे। कृपया कांग्रेस को मत बांटें।'

उसी दिन पटेल ने शरत को खुली चुनौती देते हुए फिर तार दिया—

आपके तार की सराहना करता हूं। कुछ और नहीं, केवल कर्तव्यबोध ने बयान देने को विवश किया है। मतभेद व्यक्तियों में नहीं, सिद्धांतों के बीच है। यदि संघर्ष अपरिहार्य है तो वांछित है कि चुनाव बिना कटुता और उद्देश्यों को कलंकित किये सम्पन्न होंगे। पुनर्निर्वाचन हुआ तो देशहित के लिए घातक होगा।

24 तारीख को ही पटेल ने स्वयं और कार्यसमिति के छह अन्य सदस्यों के दस्तखत के साथ एक बयान जारी किया। ये सात व्यक्ति थे—पटेल, राजेन्द्र प्रसाद, जयरामदास दौलतराम, कृपलानी, जमनालाल बजाज, शंकरराव देव और भूलाभाई देसाई। बयान के अंत में था—

...इस उच्चपद की गरिमा के अनुरूप सदैव चुनाव सर्वसम्मति से हुआ है। चुनाव पर किसी प्रकार का विवाद, भले ही वह नीतियों व कार्यक्रमों को लेकर हो, अस्वीकृत है। हमें पूरा विश्वास है कि डॉ. पट्टाभि कांग्रेस अध्यक्ष के पद हेतु पूर्णतः उपयुक्त हैं। वह कार्यसमिति के सबसे पुराने सदस्यों में से एक हैं और उन्होंने जनसेवा में एक लंबा और अटूट कीर्तिमान स्थापित किया है। अतः हम कांग्रेस प्रतिनिधियों से उनके नाम के चुनाव की संस्तुति करते हैं। हम सुभाष बाबू के सहयोगियों से यह भी मांग करते हैं कि वे सुभाष बाबू पर जोर डालें कि वह निर्णय पर पुनर्विचार करें तथा डॉ. पट्टाभि सीतारमैय्या का चुनाव सर्वसम्मति से होने की अनुमति दें।'

भाषा सख्त थी। सुभाष ने भी सख्त भाषा में दक्षिणपंथी गुट पर प्रहार करते हुए 25 जनवरी को बयान दिया। बयान में सुभाष ने अपना रक्ष रखते हुए अपनी शंकाएं भी रखीं। उन्होंने कांग्रेस का वामपंथी अध्यक्ष होने की जरूरत पर गहरा बल दिया।

यह व्यापक धारणा है कि आगामी वर्ष में ब्रिटिश सरकार तथा कांग्रेस के दक्षिणपंथियों के बीच संघीय योजना के मामले में समझौते की संभावना है। परिणामस्वरूप दक्षिणपंथी ऐसा वामपंथी अध्यक्ष नहीं चाहते, जो समझौते की राह में कांटा साबित हो और वार्ता में अवरोध उत्पन्न करे। किसी को भी जनता के बीच जाकर विचार-विमर्श करना चाहिए और यह पता लगाना चाहिए कि इस धारणा की जड़ें कितनी गहरी हैं। वर्तमान परिस्थितियों में यह आवश्यक है कि ऐसा अध्यक्ष हो, जो अपने संपूर्ण हृदय से संघ के विरुद्ध हो।

अध्यक्ष का चुनाव पूर्णतः प्रतिनिधियों से संबंधित है और इसे उन्हीं पर छोड़ देना चाहिए। दक्षिणपंथियों को, जो कांग्रेस में निर्णायक बहुमत में हैं, वामपंथियों के प्रति सद्भाव प्रदर्शित करते हुए, इस अंतिम समय में भी एक वामपंथी प्रत्याशी को स्वीकार करना चाहिए। मैं आशा करता हूं कि मेरी अपील व्यर्थ नहीं जायेगी।

वामपंथी अध्यक्ष के चुनाव का आग्रह करते हुए सुभाष ने दक्षिणपंथियों की कार्यप्रणाली, उद्देश्य और तानाशाही पर खुले आरोप लगाये। भारतीय संघ के उनके समर्थन को, जो प्रकट रूप में कहीं नहीं था (पर अप्रकट रूप में उसकी संभावना थी) सुभाष ने मुख्य मुद्दा बनाया। सुभाष के इस बयान का जवाब देते हुए पटेल ने भी 25 जनवरी को बारदोली में ही बयान दिया, जो इस बार सिर्फ उनके दस्तखत के साथ था। उसके अंत में था—

मुझे यह जानकर कष्ट होता है कि सुभाष बाबू हस्ताक्षरकर्ताओं तथा कार्यसमिति के बहुमत के उद्देश्यों पर दोषारोपण करते हैं। मैं इतना ही कह सकता हूं कि मैं ऐसे किसी भी सदस्य को नहीं जानता हूं, जो इंडिया ऐक्ट 1935 की संघ सरकार का समर्थक हो। और आखिरकार एक अकेला सदस्य, यहां तक कि फिलहाल कांग्रेस अध्यक्ष भी, इतने बड़े मुद्दे पर अकेले निर्णय नहीं ले सकता है। सिर्फ कांग्रेस ही यह निर्णय ले सकती है। जब कांग्रेस का सत्र न चल रहा हो तो कार्यसमिति के पास भी वह शक्ति नहीं कि वह कांग्रेस की घोषित नीति की आत्मा से विलग हो सके।

25 जनवरी को ही पट्टाभि ने भी बारदोली से बयान दिया, जिसमें गांधीवाद पर अपनी आस्था प्रकट करते हुए उन्होंने स्वयं से सवाल किया कि मैं सुभाषचन्द्र बोस के समर्थन में क्यों नहीं हट जाता? मैं ऐसा नहीं कर सकता, क्योंकि मुझे अपने अमूल्य सहयोगियों की भावनाओं का प्रतिरोध नहीं करना चाहिए।

नेहरू भी इस अखाड़े में उतरे। 26 जनवरी को उन्होंने बयान दिया, जिसमें सुभाष के अध्यक्ष पद के लिए चुनाव में खड़े होने का विरोध था—

'कुछ कसौटी के अवसरों पर मुझे कांग्रेस की अध्यक्षता का अनुभव है और कई मौकों पर मैं त्यागपत्र देने के मुकाम पर जा पहुंचा था, क्योंकि मुझे लगा था कि मैं पद पर न रहकर, अपने तथा कांग्रेस के लक्ष्य को प्राप्त करने में अधिक सहायता कर सकूंगा। इस वर्ष कुछ सहयोगियों ने मुझसे अध्यक्ष पद के लिए फिर से खड़े होने को कहा। मैंने आत्यंतिक रूप से मना कर दिया। उन कारणों पर मैं यहां बहस नहीं करना चाहता। उन तथा अन्य कारणों से, मैं बराबर स्पष्ट था कि सुभाष बाबू को खड़ा नहीं होना चाहिए। मैंने अनुभव किया कि उनकी और मेरी क्षमताएं इस चरण में उस कार्यालय का कार्यभार संभालने में क्षीण हो जायेंगी। मैंने सुभाष बाबू को यह बात बता दी थी।'

सुभाष ने 27 और 28 जनवरी को भी अपने बयान जारी किये। 29 जनवरी को अध्यक्ष पद के लिए चुनाव हुआ। सुभाष जीत

गये। उन्हें 1580 और पट्टाभि को 1375 मत मिले।

पट्टाभि को गांधी का समर्थन प्राप्त था इसलिए गांधी ने पट्टाभि की हार को स्वयं की हार मानते हुए 2 फरवरी के 'हरिजन' में लिखा—

सुभाष बोस ने अपने विरोधी डॉ. पट्टाभि सीतारमैय्या पर एक निर्णायक विजय प्राप्त की है। मैं स्वीकार करता हूं कि एकदम शुरुआत से ही निर्णायक रूप से मैं उनके पुनर्निर्वाचन के विरोध में था और इसके कारणों में जाने की आवश्यकता मुझे नहीं है। उनके तथ्यों तथा उनके घोषणापत्र के तर्कों से मैं सहमत नहीं हूं। मैं सोचता हूं कि अपने मित्रों को जो ब्योरे उन्होंने दिये, वे न्यायरहित तथा मूल्यहीन थे। फिर भी, मैं उनकी विजय से प्रसन्न हूं। चूंकि डॉ. पट्टाभि को प्रत्याशिता वापस न लेने हेतु प्रोत्साहित करने का मैं निमित्त था, जब मौलाना साहब ने अपना हाथ खींच लिया था, अतः अपेक्षा उनके, यह मेरी पराजय अधिक है। मेरा होना व्यर्थ है, यदि मैं निश्चित नीति और सिद्धांतों का प्रतिनिधित्व नहीं करता हूं। इसलिए, मुझे यह स्पष्ट है कि प्रतिनिधियों ने उन नीतियों व सिद्धांतों का अनुमोदन नहीं किया है, जिनके पक्ष में मैं हूं।

मैं इस पराजय में प्रसन्न हूं। यह मुझे उस बात को कार्यरूप में परिणत करने का अवसर प्रदान करती है, जो मैंने दिल्ली की पिछली एआईसीसी की मीटिंग में अल्पसंख्यकों के बहिर्गमन वाले लेख में कही थी। सुभाष बाबू, जिन्हें वे दक्षिणपंथी कहते हैं, उनकी परेशानियों के अध्यक्ष होने के बजाय अब एक लड़े गये चुनाव के निर्वाचित अध्यक्ष हैं। यह उन्हें एक समांगी (होमीजीनियस) कैबिनेट को चुनने का अवसर प्रदान करता है और बिना किसी रुकावट के अपने कार्यक्रम को अमल में लाने की ताकत देता है।

यह वस्तुतः सुभाष के सामने फेंका गया गांधी का तुरुप का पत्ता था। गांधी ने कहा कि सुभाष चुनाव लड़ने के बाद अब चुने हुए अध्यक्ष हैं और दक्षिणपंथियों से मुक्त हैं, इसलिए उन्हें अपनी समतापूर्ण (होमोजीनियस) कार्यसमिति (कैबिनेट) चुननी चाहिए और अपने कार्यक्रमों को बिना किसी बाधा के लागू करना चाहिए। यह गांधी की तरफ से अपनी नीतियों यानी गांधीवाद और वामपंथ के बीच खुले युद्ध की घोषणा थी। गांधी ने सुभाष को चुनौती दी कि वह गांधी और दक्षिणपंथी गुट से अलग अपनी वामपंथी विचारधारा के लोगों को लेकर अपनी कार्यसमिति बनायें और अपने कार्यक्रम, यानी भारतीय संघ का विरोध और ब्रिटिश साम्राज्य को चेतावनी के साथ 6 महीने का समय देकर जनसंघर्ष छेड़ें। परोक्ष में गांधी, गांधीवादी दक्षिणपंथी और कांग्रेस, सुभाष और उनके वामपंथी सहयोगियों के इन कार्यक्रमों से अपने को अलग कर रहे थे।

सुभाष ने 4 फरवरी को गांधी को जो उत्तर दिया, वह उनके पूरे वर्ष 1938 के भाषणों, बयानों की उग्र और आक्रामक भाषा के विपरीत, गांधी के सामने एक तरह से समर्पण था—

'मैंने ताजे अध्यक्षीय चुनाव से संबंधित महात्मा गांधी के वक्तव्य का अध्ययन बहुत ही गहराई से किया है। मुझे यह जानकर आंतरिक दुख है कि महात्मा गांधी ने इसे अपनी व्यक्तिगत पराजय के तौर पर लिया है। मैं उनसे इस विषय में अत्यंत सम्मानपूर्वक विचार वैभिन्न्य रखता हूं। वे मतदाता यानी प्रतिनिधि, महात्मा गांधी की सहमति या विरोध में वोट डालने के लिए आमंत्रित नहीं थे। परिणामस्वरूप, उस संघर्ष के परिणाम ने मेरी तथा अधिकांश जनों की दृष्टि में, उन्हें व्यक्तिगत तौर पर प्रभावित नहीं किया।...

इस संदर्भ में मैं यह भी कहना चाहूंगा कि कुछ अवसरों पर, जनता से संबंधित प्रश्नों के बारे में मैंने महात्मा गांधी से मतभेद का अनुभव किया है, किन्तु उनके व्यक्तित्व के सम्मान के संबंध में ऐसा कुछ भी नहीं है। यदि मैं उन्हें ठीक-ठीक समझ पाया हूं, तो वे भी चाहेंगे कि लोग खुद सोचें, भले ही हर बार वे उनसे सहमत न हों। मैं नहीं जानता कि मेरे बारे में महात्मा जी के क्या विचार हैं, लेकिन उनके जो भी विचार हों, मेरा उद्देश्य सदैव यही रहेगा कि प्रयासपूर्वक उनका विश्वास जीतूं, केवल इस साधारण कारण से ही मेरे लिए यह दुखद होगा कि मैं दूसरों का विश्वास तो जीतने में सफल रहूं, लेकिन भारत के महानतम व्यक्ति का विश्वास जीतने में असफल रहूं।'

8 फरवरी को पटेल ने प्रसाद को पत्र लिखा कि हमारे लिए सुभाष के साथ मिलकर काम करना असंभव है। वह स्वयं भी (सुभाष) वास्तव में यही चाहते हैं कि उन्हें काम करने की पूरी स्वतंत्रता मिले। 22 फरवरी को वर्धा में कार्यसमिति की बैठक हुई। सुभाष बीमार थे, इसलिए उसमें उपस्थित नहीं हो सके। सुभाष की बीमारी को 'रहस्यमय' कहा गया। वर्धा में पुरानी कार्यसमिति के 15 सदस्यों में से 12 ने इस्तीफा दे दिया। जिन तीन ने इस्तीफा नहीं दिया, वे थे नेहरू, शरतचन्द्र बोस और स्वयं सुभाष। नेहरू ने बाद में अलग से इस्तीफा दिया। यानी अब पुरानी कार्यसमिति सुभाष के विरुद्ध उनसे अलग हो गयी थी। राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा है कि वर्धा में सुभाष के न होने से इस्तीफे पड़े रहे और स्वीकृत नहीं हुए।

उधर गांधी कांग्रेस के दो हिस्सों में बंट जाने तक के लिए तैयार थे। गांधी के इस बयान के बाद कि पट्टाभि की हार उनकी हार है, स्थिति में एक गुणात्मक परिवर्तन आ गया। वह यह कि वे कांग्रेसी, जिन्हें स्थिति का पूरा अनुमान नहीं था और जिन्होंने सुभाष के पक्ष में मतदान किया था, वे गांधी के इस बयान के बाद बदल गये। उनके लिए गांधी के इस बयान का स्पष्ट मतलब था कि गांधी के नेतृत्व, नीतियों, उद्देश्यों से उनका स्वयं को अलग कर लेना। वे यह किसी कीमत पर नहीं चाहते थे। गांधी के नेतृत्व पर उन्हें शंका ही नहीं थी। अध्यक्ष पद का यह चुनाव विचारों और विचारधारा के संघर्ष का चुनाव था, पर गांधी के इस बयान के बाद, इसने कांग्रेस के विभाजित स्वरूप में, किसी एक पक्ष का समर्थन और दूसरे को छोड़ने का रूप ग्रहण कर लिया। सुभाष के लिए वे गांधी को छोड़ने को तैयार नहीं थे। सुभाष को मत देने के बाद भी, गांधी के प्रश्न पर उन्होंने अपनी निष्ठाएं, गांधी के प्रति अक्षुण्ण रखीं। वह गांधी की नीतियों और नेतृत्व के साथ ही कांग्रेस को चलाना चाहते थे।

10 मार्च 1939 को त्रिपुरी (महाकौशल) में कांग्रेस अधिवेशन शुरू हुआ। सुभाष बीमार थे। उन्हें स्ट्रेचर पर लाया गया। पूरी कार्यवाही में वह मंच पर लेटे रहे। गांधी राजकोट में अपने उपवास पर थे, जो वहां की रियासत के विरुद्ध जनता के संघर्ष के समर्थन में था। बीमार सुभाष का अध्यक्षीय भाषण शरतचन्द्र ने पढ़ा।

त्रिपुरी अधिवेशन में गोविन्द वल्लभ पंत ने एक प्रस्ताव रखा—

उन अनेक गलतफहमियों को ध्यान में रखते हुए, जो देश तथा कांग्रेस में पैदा हो गयी है, और जिनका संबंध अध्यक्ष के चुनाव तथा उसके बाद की घटनाओं से है, यह आवश्यक हो गया है कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी स्थिति को स्पष्ट करे तथा अपनी प्रमुख नीति की घोषणा करे।

'कमेटी कांग्रेस की उन आधारभूत नीतियों से गहरे जुड़ाव की घोषणा करती है,

जिन्होंने विगत वर्षों में इसके कार्यक्रमों को महात्मा गांधी की राह दिखाने में निर्देशित किया है, और निश्चित रूप से इस विचार की है कि इन नीतियों में कोई रुकावट नहीं आनी चाहिए और यह कि वे भविष्य में भी कांग्रेस के कार्यक्रमों को निर्देशित करते रहें। कमेटी कार्यसमिति के कार्यों के प्रति आत्मविश्वास व्यक्त करती है, जिसने पिछले साल काम किया है, और इसके किसी सदस्य पर लगाये गये किसी भी आरोप की निन्दा करती है।

उन खास परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए, जो आगामी वर्षों में सामने आ सकती हैं तथा इस लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए कि महात्मा गांधी अकेले ही कांग्रेस का नेतृत्व कर सकते हैं और उस कठिन समय में देश को विजय दिला सकते हैं, कमेटी इसे अत्यावश्यक मानती है कि कांग्रेस कार्यसमिति को उनका प्रश्नविहीन विश्वास प्राप्त हो, व अध्यक्ष से निवेदन करती है कि वह गांधीजी की इच्छाओं के अनुरूप ही कार्यसमिति को नामांकित करें।

प्रस्ताव में गांधी तथा पुरानी दक्षिणपंथी कार्यसमिति तथा उनकी नीतियों पर प्रश्नविहीन निष्ठा थी। उनकी सर्वोच्च सत्ता की स्वीकृति थी। उनके हाथों में ही समस्त अधिकार सौंपने की कूटनीति तथा नये अध्यक्ष को निर्देश थे। प्रस्ताव का अनुमोदन राजगोपालाचारी ने किया। राजनैतिक हलकों में यह माना जा रहा था कि यह प्रस्ताव राजगोपालाचारी की विलक्षण बुद्धि से जन्मा था। प्रस्ताव के समर्थन में बोलते हुए राजाजी ने कहा—

इस वक्त नदी में दो नावें मौजूद हैं। एक तो पुरानी, किन्तु बड़ी नाव है, जिसके नाविक महात्मा गांधी हैं। दूसरे व्यक्ति के पास नई नाव है, जिसे आकर्षक रूप में रंगा गया है और झंडे लगाये गये हैं। महात्मा गांधी एक परखे हुए नाविक हैं, जो सफलतापूर्वक पार उतार देंगे। यदि आप दूसरी नाव में पांव रखते हैं, जिसमें कि मैं जानता हूं, कई छेद हैं, तो वह सभी को डुबो देगी और निश्चित रूप से नर्मदा (त्रिपुरी नर्मदा किनारे था) एक बहुत ही गहरी नदी है।

नया नाविक कहता है, 'अगर तुम मेरी नाव में नहीं आते तो कम से कम मेरी नाव को अपनी नाव से जोड़ ही लो।' यह भी असंभव है। हम एक बेहतर नाव को एक छेदों वाली नाव से नहीं जोड़ सकते, जबकि हमें तलहटी में जाने का खतरा साफ दिखायी पड़ रहा हो।

स्थिति पूरी तरह उलझ गयी थी। इस प्रस्ताव द्वारा सुभाष के लिए कांग्रेस महासमिति का स्पष्ट निर्देश था कि वह गांधी की इच्छाओं के अनुरूप काम करें। शरत ने पटेल से कहा कि सुभाष के समर्थक, पंत के प्रस्ताव का समर्थन करने को तैयार हैं, यदि इसमें कुछ परिवर्तन कर दिया जाये। सरदार ने इसका कोई उत्तर ही नहीं दिया। शरत ने पटेल के इस रुख की शिकायत गांधी से की कि पटेल का रुख ऐसा था कि प्रस्ताव में एक भी शब्द, एक भी कौमा नहीं बदला जायेगा। पंत का यह प्रस्ताव बहुमत से बड़े हंगामे के बाद पारित हो गया। कांग्रेस पंडाल व अधिवेशन का वह हंगामा, अराजक व उग्र वातावरण 1907 के सूरत में कांग्रेस के हंगामे की याद दिलाता था। अत्यन्त विद्वेषपूर्ण और आक्रामक वातावरण में पंत के प्रस्ताव का पारित होना वस्तुतः सुभाष पर पटेल की ही सीधी जीत थी। शरतचन्द्र बोस ने गांधी को पटेल के विरुद्ध अत्यन्त कटु भाषा में पत्र लिखा—

मैंने त्रिपुरी में उन सात दिनों के दौरान जो भी देखा या सुना, उसने मेरी आंखें खोल दीं। सत्य तथा अहिंसा का वह प्रदर्शन, जो मैंने उन लोगों में देखा, जिन्हें जनता आपके शिष्य तथा आपके सिद्धांतों का प्रस्तोता समझती है, यदि मैं आपके ही शब्दों का प्रयोग करूं तो मेरे, 'नथुनों में बदबू भर गई।' राष्ट्रपति (कांग्रेस अध्यक्ष) के खिलाफ जो कुप्रचार उन्होंने वहां किया तथा जिनकी उन राजनैतिक विचारों से सहमति थी, वे कतई टुच्चे और क्षुद्र थे। उनमें दुर्भावना थी तथा सत्य व अहिंसा की एक हल्की-सी झलक तक नहीं थी।...

त्रिपुरी में वे लोग, जो जनता के बीच आपके सामने कसमें खाते हैं, उनके लिए (सुभाषचन्द्र बोस) अवरोध के अतिरिक्त और कुछ नहीं प्रस्तुत कर सके और अपना मतलब निकालने के लिए (उन्होंने) उनकी अस्वस्थता का पूरा और कुत्सित लाभ उठाया। कार्यसमिति के कुछ पूर्व सदस्यों ने इस हद तक लगातार धूर्ततापूर्ण कुप्रचार किया कि राष्ट्रपति (अध्यक्ष) की अस्वस्थता 'नकली' थी और सिर्फ राजनैतिक अस्वस्थता थी।

यदि आपके प्रतिनिधियों को आपके नाम, प्रभाव व प्रतिष्ठा के सहयोग से कांग्रेस को चलाने की अनुमति दी जाती है तो यह सिर्फ आपके जीवनकाल के दौरान ही चल सकेगी। आपकी अनुपस्थिति में, जनता को उन्हें दरकिनार करने में समय नहीं लगेगा। अध्यक्षीय चुनाव के पश्चात् आपने एक सार्वजनिक वक्तव्य में परिणाम को अपनी स्वयं की पराजय कहा है। कृपया मुझे यह कहने की अनुमति दें कि यह पूर्णतः गलत व्याख्या है, क्योंकि जनता को आपके पक्ष अथवा विपक्ष में निर्णय करने के लिए नहीं बुलाया गया था। स्वभावतः उसे 'हाई कमांड' की पराजय कहना कुछ हद तक न्यायपूर्ण होगा। अर्थात् वह शासक समूह, जिसके सरदार पटेल नक्षत्र हैं।

यह देश का दुर्भाग्य है कि जबसे आपका स्वास्थ्य बिगड़ना प्रारंभ हुआ, आप सही ज्ञान और सूचनाओं से किसी हद तक दूर कर दिये गये और उस समूह पर अचेतन रूप से अधिकाधिक निर्भर होते गये, जो हर वक्त आपको घेरे रहता है तथा आप जिसकी बात सुनते हैं।

त्रिपुरी में कांग्रेस के मंत्रियों ने एक पक्ष के हित में खुले तौर पर अपने प्रभाव का उपयोग किया—नैतिक तथा भौतिक, और यही बात है, जिसका सर्वाधिक श्रेय अंतिम परिणाम को जाता है। यदि कांग्रेस पर मंत्रियों का यह प्रभुत्व जारी रहता है, तो यह निहित स्वार्थों की प्रवक्ता बनकर समाप्त हो जायेगी और उसके द्वारा नीतियों तथा कार्यक्रमों का स्वतंत्र लोकतांत्रिक क्रियान्वयन, भविष्य में नहीं हो सकेगा।

अधिवेशन के दौरान सुभाष स्ट्रेचर पर लेटे थे। सुभाष की तबीयत काफी खराब थी। वह बेचैन थे। पसीने से भींगे थे। उनकी तीन भतीजियां उन्हें पंखा कर रही थीं। उनके माथे पर बरफ रख रही थीं। बादशाह खान उसी दौरान एक बार उन्हें देखने गये। सुभाष ने उनका हाथ पकड़कर प्रार्थना जैसी की, 'मेहरबानी' करके सरदार और उनके गिरोह को अकेला छोड़ दीजिए। वे ईमानदार नहीं हैं। वे अपराधी हैं।' बादशाह खान ने उन्हें सान्त्वना दी और बाहर आकर कहा—'पता नहीं हमारी किस्मत में क्या लिखा है। आजादी अभी बहुत दूर है पर इस लड़ाई के बड़े नेताओं को देखो। उनके अंदर एक-दूसरे के लिए इतनी नफरत है, जब समय आयेगा, तो कौन मुल्क की रहनुमाई करेगा।'

महासमिति में पंत का प्रस्ताव पारित हो जाने के बाद अब गेंद पूरी तरह गांधी के पाले में आ गयी थी। प्रस्ताव पारित होने के बाद सुभाष के लिए जरूरी हो गया था कि वह कार्यसमिति के चयन से पहले गांधी से उन नामों पर सहमति लें। उधर गांधी परिदृश्य से अनुपस्थित थे। गांधी राजकोट में उपवास पर थे। ❑

नेहरू हर महीने भेजते रहे नेताजी की बेटी को आर्थिक मदद

❑ पंकज श्रीवास्तव

प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने 'डिस्कवरी ऑफ़ इंडिया' जैसी किताब लिखकर इतिहास को भले ही समृद्ध किया हो, लेकिन लोगों में इतिहास के प्रति दिलचस्पी तो मौजूदा प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने ही जगाई है। इसके लिए देश की नौजवान पीढ़ी को ख़ासतौर पर उनका आभारी होना चाहिए। वे अपने भाषणों में अगर यक़ीन से परे दावों की मुसलसल धार न छोड़ते तो लोग इतिहास के मूल पाठ की खोज शायद ही करते। इससे पहले स्वतंत्रता आंदोलन के तमाम नायकों के खिलाफ़ दुष्प्रचार की खिचड़ी धीमी आँच पर पक रही थी, लेकिन मोदी राज में सामने आए व्हाट्सऐप के ईंधन से यह आँच इतनी तेज़ हुई कि खिचड़ी जल ही गई।

मोदी के प्रधानमंत्री बनने के बाद 'बोस फाइल्स' का जैसा हल्ला मचा, वह याद करने लायक़ है। सुभाषचन्द्र बोस के प्रति अन्याय, उनके ग़ायब होने और उसमें नेहरू सरकार की भूमिका को लेकर जो कहानियाँ दशकों से फैलाई गई थीं, अब उनके साबित होने का वक्त आ गया था। लेकिन इन फाइलों से जो निकला, वह बिलकुल उलट था। यह भारत के स्वतंत्रता संग्राम के नायकों को नई चमक दे गया।

हमने पहली बार जाना कि सुभाषचंद्र बोस की बेटी के लिए नेहरू ने हर महीने आर्थिक मदद की व्यवस्था कराई थी। वैसे अगर नेताजी के परिवार ने स्वीकार न किया होता तो शायद बहुत लोग यह भी न मानते कि उन्होंने किसी से विवाह भी किया था या एक एक बेटी के पिता भी थे।

नेता जी के विवाह की दिलचस्प कहानी

नेताजी सुभाषचंद्र बोस, इलाज के लिए 1934 में आस्ट्रिया की राजधानी विएना में थे, जहाँ वे खाली वक्त का इस्तेमाल अपनी किताब 'द इंडियन स्ट्रगल' लिखने में कर रहे थे। मदद के लिए उन्हें एक टाइपिस्ट की ज़रूरत थी। 23 साल की एमिली शेंकल का चुनाव इसी काम के लिए हुआ था। लेकिन स्वतंत्रता संग्राम के इस 37 वर्षीय नायक के सीने में एक दिल भी था, जो अपने से 14 साल छोटी एमिली के प्यार भरे स्पर्श से धड़क उठा। 'स्वदेश' और 'स्वदेशी' में पगे नेताजी की नज़र में 'विदेशी' से प्यार या शादी कोई गुनाह नहीं था। 26 दिसंबर 1937 को एमिली के 27वें जन्मदिन पर ऑस्ट्रिया के बादगास्तीन में दोनों ने शादी कर ली। लेकिन उन्हें साथ रहने का अवसर कम ही मिला। वे जल्दी ही भारत लौट आए, जहाँ कांग्रेस के अध्यक्ष की कुर्सी उनका इंतज़ार कर रही थी।

स्वतंत्रता आंदोलन की व्यस्तताओं के बीच नेताजी का विदेश जाना कम ही हो पाता था, फिर भी एमिली को लिखी चिट्ठियाँ उनके गहन प्यार की गवाही देती हैं। 29 नवंबर, 1942 को उनकी बेटी अनीता का जन्म हुआ। वे अपनी संतान को देखने गए और वहीं से अपने बड़े भाई शरतचंद्र बोस को ख़त लिखकर इसकी जानकारी दी।

अफ़सोस, वहाँ से लौटकर नेताजी सुभाष जिस मिशन पर निकले, उससे कभी लौट कर नहीं आए। एमिली बोस 1996 तक जीवित रहीं और उनकी बेटी अनीता ने एक मशहूर अर्थशास्त्री के रूप में पहचान बनाई।

ज़ाहिर है, एमिली ने सिंगल मदर के रूप में काफ़ी कठिनाइयों के बीच अकेली बेटी को पाला, लेकिन अब हमें पता है कि एक शख़्स ऐसा था, जो नेता जी के परिवार को लेकर हमेशा चिंतित रहा। वे थे जवाहर लाल नेहरू, जिन्हें सुभाष का विरोधी बताने का पूरा अभियान चलाया गया है। जबकि दोनों ही काँग्रेस के समाजवादी खेमे के नेता थे। कोई निजी मतभेद नहीं था। सुभाषचंद्र बोस की 'सैन्यवादी प्रवृत्ति' को गाँधीजी उचित नहीं मानते थे। पर वे गाँधी की दृष्टि को ज्यादा महत्वपूर्ण मानते थे। यह नेहरू के प्रति सम्मान ही था कि जब सुभाष बोस ने आज़ाद हिंद फ़ौज बनाई तो एक ब्रिगेड का नाम नेहरू के नाम पर रखा। गाँधी जी को 'राष्ट्रपिता' का संबोधन भी नेता जी ने ही दिया था, जो बताता है कि वैचारिक विरोध के बावजूद वे गाँधी जी की महानता के किस क़दर क़ायल थे।

और नेहरू ने क्या किया...? ये तो सब जानते हैं कि लालकिले पर आज़ाद हिंद फौज के अफ़सरों के खिलाफ़ चले मुकदमे के लिए उन्होंने वचाव पक्ष के वक़ील का चोगा पहना था, लेकिन सुभाष के प्रति उनके निजी प्रेम का खुलासा तो मोदी जी की वजह से ही हो पाया।

मोदी जी के प्रधानमंत्री बनने के बाद जनवरी 2016 में कई फ़ाइलें सार्वजनिक की गईं तो पता चला कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी (एआईसीसी) ने 23 मई 1954 को नेताजी की बेटी की मदद के लिए दो लाख रुपये का एक ट्रस्ट बनाया था, जिससे उन्हें 500 रुपये प्रति माह आर्थिक मदद दी जाती थी। प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू और पश्चिम बंगाल के तत्कालीन मुख्यमंत्री बी. सी. रॉय इस ट्रस्ट के ट्रस्टी थे। एआईसीसी ने 1964 तक अनिता को 6,000 रुपये वार्षिक की मदद की। 1965 में उनकी शादी के बाद यह आर्थिक सहयोग बंद कर दिया गया। यह मत समझिए कि तब 500 रुपये महीने कोई छोटी रकम थी। बड़े-बड़े अफ़सरों को भी इतना वेतन नहीं मिलता था।

और हाँ, नेहरू जी ने इस बात का कभी ढोल नहीं पीटा। न इसका विज्ञापन हुआ और न भाषणों में कभी कोई जिक्र ही हुआ। उनके बाद भी इसकी चर्चा काँग्रेस के किसी बड़े नेता ने शायद ही कभी की हो। आप समझ सकते हैं कि जिस बोस फाइल्स को लेकर संघ और उससे जुड़े संगठन लगातार लंबी-लंबी हांकते थे, उसकी हक़ीक़त वे सत्ता में आने के बाद बता क्यों नहीं बता पाते। छह साल अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार रही और सात साल मोदी जी के हो गये हैं। न वायपेयी के समय बोस से जुड़ी अफ़वाहों के प्रमाण मिल सके और न मोदी राज में ही वह सामने आ सका, जो शाखामृग सुनते-बोलते बड़े होते हैं। बोस फाइल्स का हर पन्ना नेहरू और गाँधी की महानता का ही कोई नया प्रमाण पेश कर देता है, इसलिए अब इस पर चुप्पी है। ❑

बंटवारा

❑ मनीष सिंह

इतिहास के पन्नों पर बिटवीन द लाइंस पढ़ने, सोचने, समझने से बहुत कुछ छूट गया है। पीढ़ियां बेहद नशे में जीती चली गयी हैं। जो पढ़ लिया, वो लिख दिया। जो सुन लिया, वो मान लिया। घटनाओं, उनके संकेतों और सूत्रों से उलझने, सिर खपाने की जहमत कौन उठाये। मनीष सिंह का अध्ययन सतत है, वे बेहद क्रियाशील हैं। शासकीय सेवा से त्याग-पत्र देकर निजी व्यवसाय में उतरने के बाद वे शैक्षणिक और सामाजिक संस्थाओं के साथ जुड़कर काम कर रहे हैं। उनका स्वाध्याय बेहद सघन है। उनके लिखे की काट नहीं है। उन्हें पढ़िए तो बने बनाये ढांचे टूटते हैं, धारणाओं का संसार बिखर जाता है, इतिहास के पन्ने बोलने लगते हैं। यहां प्रस्तुत है उनके दो आलेख, एक इतिहास के कुछ विरल पन्नों का विश्लेषण है, तो दूसरा वर्तमान का। **-सं.**

सुभाषचंद्र बोस इतिहास के ऐसे कैरेक्टर हैं, जिनका असल शेड समझना बड़ा उलझन भरा काम है। किसी के प्रति प्रचलित धारणा, आसपास की बतकही और सीमित स्कूली किताबों से बनी होती है। आसपास के लोग जो धारणा बनाए होते हैं, वही आप भी बना लेते हैं। यह बड़ी हार्मलेस प्रक्रिया है। हार्मलेस इसलिए कि आज की डेट में सुभाष, श्यामा प्रसाद मुखर्जी, गांधी, नेहरू पर हमारी आपकी धारणा का महत्व ही क्या है? ये लोग तो चले गए। प्रासंगिक मोदी, राहुल, ममता, माया हैं। प्रासंगिक उनकी नीतियां और भविष्य का उनका दर्शन है।

पोलिटिकल हिस्ट्री सिर्फ अकादमिक नही, सेल्फ डेवलपमेंट का भी एक औजार है। आप जिस तरह मैनेजमेंट और धर्म से जुड़ी किताबें आंतरिक उत्थान के लिए पढ़ते हैं, ऐतिहासिक घटनाओं और चरित्रों को समझना भी आपके व्यक्तित्व को उत्थान देता है। मजा तब आता है, जब उसी दौर की दूसरी घटनाओं के समय क्रम के आधार पर एक-एक परत खोलकर चरित्र का आलोच्य विश्लेषण करते हैं, तो कुछ ऐसी बातें समझ में आती हैं, जो उस व्यक्तित्व के सम्मान में की गयी अब तक की बतकही का हिस्सा नहीं होतीं।

मसलन 1937 में बंगाल में कांग्रेस एकतरफा जीतती है। सुभाष अभी कांग्रेस के लीडर हैं, लेकिन अगला चुनाव आते आते वे कांग्रेस छोड़ देते हैं। उल्लेखनीय बात यह है कि उनका फ़ारवर्ड ब्लॉक चुनाव भी नहीं लड़ रहा है। महज जोगेंद्रनाथ मंडल के नेटवर्क को सपोर्ट कर रहा है और जोगेंद्र नाथ मुस्लिम लीग को सपोर्ट कर रहा है। शायद आजकल की राजनीति में इसे ही 'पार्टी से भितरघात' करना कहते हैं। नतीजा, चुनाव में किसी को बहुमत नहीं आता। कांग्रेस जादुई अंक से पिछड़ जाती है। जोगेंद्रनाथ, मुस्लिम लीग और महासभा का गठबंधन सत्ता में आ जाता है। इस गठबंधन में सुभाष के बड़े भाई भी मंत्री बनने को थे, यह स्थापित फैक्ट है। किन्तु चार माह से गायब सुभाष के जर्मनी पहुँच जाने की खबर के कारण परिवार नजरबंद हो जाता है। शपथ नहीं हो पाती। यह अंदरखाने में मिलीभगत का प्रमाण नहीं तो क्या है?

आपने कभी सोचा है कि इस मामूली राजनीतिक पक्षधरता का राष्ट्रीय राजनीति पर दुष्प्रभाव क्या पड़ा? कभी आपने महसूस किया? लीग और महासभा का बंगाल की सरकार में होना, पोलिटिकली वीक फोर्सेज को आगे पांच साल के लिए इतनी ताकत और पोजिशनिंग दे देता है कि वे बंगाल में 2002 करवा सकें। क्योकि सफल दंगे, गुंडा-तत्त्व नहीं करते। हमेशा एक पार्टी द्वारा 'डायरेक्ट ऐक्शन' के आव्हान और फिर सरकार द्वारा फील्ड में तीन दिन खुली छूट देने के कारण होते हैं।

यूं समझिये कि चालीस साल तक झारखंड और तेलंगाना मांगने या लगातार आंदोलन करने से भी नहीं मिले। तभी मिले, जब सरकार ने दिया। बंटवारा सरकार करती है। बंग भंग मांगा नहीं गया, दिया गया, क्योंकि सरकार की मर्जी थी। हरियाणा, छतीसगढ़ भी तभी तब मिला, जब सरकार ने निर्णय लिया. तो दंगे सफल करने की ताकत न होती, तो पाकिस्तान की मांग भी लीग के 50 साल आंदोलन करने के बावजूद नहीं मंजूर होती। देश इसलिए बंट गया क्योंकि मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा में दंगे सफल करने की कूवत थी और देश इसलिए बंट गया क्योंकि तत्कालीन अंग्रेज सरकार के पास ही इस फैसले का अधिकार था। आप खुद सोचकर देखिये, बंटवारे में बंगाल और पंजाब के वही हिस्से गए, जहां लीग और महासभा की सरकारें थी। अब नीचे लिखे को रिवर्स ऑर्डर में पढ़कर देखिये।

1947 में बंटवारा - 1946 में दंगा - 1941 में मुस्लिम लीग की सरकार - 1941 में कांग्रेस में भितरघात - 1940 में पार्टी में सुभाष प्रेरित टूट - 1939 में सुभाष का पार्टी से इस्तीफा - 1938 जीतने के बावजूद उन्हें गांधी द्वारा अध्यक्ष पद से हटाया जाना।

निश्चित ही सुभाष ने कभी नहीं सोचा होगा कि घटनाएं इस कदर टर्न लेंगी। न गांधी ने सोचा होगा कि मामला यहां तक पहुँचेगा। अगर यह रिवर्स धारा गांधी पर जाकर रुकती है, तो आइये उस बिंदु का भी पोस्टमार्टम कर लेते हैं।

सुभाष 1923 में पार्टी जॉइन करते हैं। उनकी गतिविधियां भारत में 1929 तक दिखती हैं। इसके बाद पूर्ण स्वराज प्रस्ताव और सविनय अवज्ञा के दौर में ज्यादातर वक्त वे एनआरआई की तरह यूरोप में हैं। 1930-35 का समय महत्वपूर्ण है। दूसरे गोलमेज सम्मेलन के बाद भारत में प्रादेशिक सरकारों को, भारतीयों को दिये जाने का खाका बन रहा है। 1935 का भारत शासन अधिनियम आने वाला है। यह एक बड़ी जीत है, लेकिन अभी और

स्वायत्तता के लिए दबाव जारी है। गांधी निगोसिएशन के मोड में हैं। नेहरू जेल में हैं, उनसे संपर्क पर प्रतिबंध है। गांधी अभी दूसरे नेताओं पर निर्भर हैं।

उधर यूरोप में सुभाष, कमला का इलाज कराते हुए नेहरू से दोस्ती निभाते हैं, सरदार पटेल के बड़े भाई की प्रॉपर्टी के मामले में उनसे दुश्मनी मोल लेते हैं। एमिली से गुप्त विवाह भी होता है, पर वे पोलिटिकल आदमी हैं, तो योरोपियन डेवलपमेंट को देख, समझ रहे हैं, विचार बैठा रहे हैं। ये फासिज्म और नाजिज्म के उठान का वक्त है। सुभाष नाजी जर्मनी और मुसोलिनी के राष्ट्रवादी उफान की प्रारंभिक सफलताओं से चमत्कृत हैं। टेकिंग पावर बाई फोर्स, नागरिक सेना, अंग्रेजों से युद्ध करना, उनके दिमाग में बैठ रहा है कि तभी अचानक दिल्ली से गांधी का संदेश आता है- 'तुम्हें कांग्रेस का अगला अध्यक्ष चुन लिया गया है।' एकतरफा !!!

पर देश लौटकर आये सुभाष वह 1929 वाले सुभाष नही हैं। उनके दिमाग में अब तक गांधी का मॉडल इज्जत खो चुका है और हिटलर का मॉडल ऊपर है। वे कांग्रेस को अल्ट्रा लेफ्टिस्ट, और आक्रामक बना रहे हैं। सरदार सहित पार्टी के दूसरे नेताओं को किनारे कर रहे हैं, नेहरू सहित बहुत से युवाओं के साथ कांग्रेस को एक अलग तरह की धारा दे रहे हैं। यह उन्हें पार्टी यूथ में लोकप्रिय भी बना रहा है, जो अहिंसा की नीति से खीझे हुए हैं। एक साल के अंदर सुभाष ने कांग्रेस में एक ऐसा विभाजन पैदा किया, जो गांधी की नजर में बेहद खतरनाक दिशा में जा रहा था। नतीजतन अगली बार वे सुभाष के पक्ष में नहीं हुए।

पिछली बार बिना चुनाव, यूरोपवासी सुभाष को सहमति देने वाले गांधी इस बार सामने खड़े सुभाष के खिलाफ हैं। मगर सुभाष जिद में अध्यक्ष का चुनाव लड़ते है। जीतते भी हैं, पर गांधी की ताकत को अंडरएस्टीमेट कर जाते हैं। अगर जिद में गांधी से जीतना सम्भव ही होता, तो गांधी गांधी नहीं होते। नेहरू भी गांधी और सुभाष के बीच गांधी को चुनते हैं। मजबूरन सुभाष इस्तीफा देते हैं और खार खाये हुए किसी आम पोलिटीशयन की तरह इसकी सजा गांधी को देते हैं। अगले चुनाव में, बंगाल में..., जिसका नतीजा देश टूटने तक जाने वाला था।

हिटलर इस वक्त अदृश्य है, ब्रिटिश के खिलाफ युद्ध छेड़ चुका है। गांधी की देहरी त्याग चुके सुभाष, 1941 में हिटलर की देहरी पर पहुंचते हैं। पर हिटलर के लिए यूरोप इम्पोर्टेन्ट है, एशिया नहीं। खास महत्व न मिलता देख, वे जापान से कनेक्ट होते हैं, जो एशिया में ब्रिटिश इलाके जीत रहा है। उनकी प्रेरणा से जापानियों द्वारा कैप्चर किये गये सिपाही, वफादारी बदलते हैं। आजाद हिन्द फौज के सिपाही अब जापानी हथियार के साथ भारत पर हमला करते हैं।

सुभाष की नीयत साफ है, गांधी और नेहरू के नाम पर ब्रिगेड भी बनाई है, पर युद्ध तो आप चुन सकते हैं, युद्ध का कोर्स नही। सुभाष अंडमान पर ढाई साल जापानी ऑक्यूपेशन के दौरान एक बार पहुंचे। आजाद हिंद सरकार का झंडा फहराया, लेकिन जापानी फौजों के अत्याचार को लेकर वहां भारतीयों के प्रतिनिधिण्डल के लिए समय नही दिया। यह मजबूरी समझी जा सकती है। उनकी आजाद हिंद सरकार को तोजो, हिटलर और मुसोलिनी के देशों से ही मान्यता थी। सारे अपने अपने तरीके से योजनाबद्ध दमन और रहस्योद्घाटन में रेकार्ड बना रहे थे। उसके मुकाबले अंडमान में एक्सेस तो कुछ नहीं थी। पर यहां एक झलक दिखती है कि अगर एलाइज ये युद्ध हारते, तो भारत में जापानी शासन, सुभाष की बैसाखी सरकार की पीठ पर चढ़कर क्या कहर ढाता?

क्या लन्दन की गुलामी से टोक्यो की गुलामी बेहतर होती? यहां मुझे सुभाष के नजरिये से कतई इत्तफाक नहीं। और अंत में सुभाष का रहस्यमय अंत!

जादूगर आदमी थे सुभाष, वेरी स्मार्ट। वेरी कनिंग.. आम आदमी के बस की बात नहीं कि चुपचाप चार महीने घर में दाढ़ी बढ़ाये। रात को खिड़की से कूद कर, पठान के वेश में कलकत्ते से लाहौर और फिर पेशावर पहुंचे। रणनीति बनाये, अपनी अगली यात्रा की व्यवस्था करे। गूंगा बनकर अफगानिस्तान, ताजीकिस्तान, बेलारूस, पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया और फिर बर्लिन पहुँच जाये। ये कतई जेम्स बॉन्ड की फिल्मी स्क्रिप्ट है। सोचता हूं, ऐसे अच्छे राइटर के लिए एक और स्क्रिप्ट लिखना कितना कठिन काम होगा?

जिस वक्त मुसोलिनी की लिंचिंग, जर्मनी का समर्पण, हिटलर का सुसाइड, जापान की तयशुदा हार सामने हो। भारत और दुनिया में ब्रिटिश शासन उन्हें सूँघता फिर रहा हो, दुनिया नाजी-फासिस्ट युद्ध अपराधियों को खोज खोजकर सजा दे रही हो, सुभाष के पास दुनिया के किस कोने में जीने को जगह बची थी?

फिर अपने साथियों को छोड़ देना, इकलौते एडीसी के साथ दूसरे जहाज में जाना। ठीक उस जगह, जहां वे मंचूरिया होकर सोवियत यूनियन में आसानी से घुस सकते हों, पीछे एक जली हुई लाश और फटाफट क्रिमेशन। अगर बहुतेरी क्रिएटिव कहानियां मौजूद हैं, तो इस क्रिएशन के लिए तो परिस्थितियां भी हैं।

यहाँ यह भी जोड़ूंगा कि अगर ये क्रिएटिविटी सच है, तो 100% नेहरू और गांधी को इसकी असलियत पता थी। खासकर नेहरू ने इसकी मिस्ट्री को ढांपने का हरसम्भव प्रयास किया। क्योंकि किसी भी अच्छी स्क्रिप्ट मे सुभाष जैसे आइकन का शहीद हो जाना, उनके लीजेंड चरित्र का सबसे उपयुक्त 'दी एंड' है। सुभाष ने इस अन्त का चयन कर लिया था। उनकी मौत की जांच के प्रस्ताव पर प्रधानमंत्री नेहरू ने लिखा-नो फर्दर डिस्कशन।

लेकिन यहां मैं एक और चीज देखता हूँ। लीडर वह होता है, जो सामने आये। एक विशाल फौज, जो उनकी तस्वीर लेकर युद्ध में उतरी थी, अब कोर्टमार्शल झेल रही थी। लीडरलेस...! अगर उनके पास जिंदा रहने या मरने का विकल्प था, तो उन्हें तनकर जिंदा सामने आना चाहिए था। अपने फौजियों के साथ ट्रायल झेलना चाहिए था। आईएनए डिफेंस कमेटी, लाल किला ट्रायल में ढिल्लो-सहगल-शहनवाज से ज्यादा जान लड़ा देती सुभाष के लिए। आजादी के बाद वे नेहरू के अहसानमंद होते, और शायद इसीलिए उनके रिप्लेसर नहीं, पर सक्सेसर जरूर होते। शायद एक यूनाइटेड भारत के। आखिर गुमनामी बाबा की मौत 1983 में हुई थी। ❑

आपकी लाश

वर्तमान राजनीति का एक आप्त-विश्लेषण

❑ मनीष सिंह

मेरा मानना है कि कांग्रेस गवरनेंस के दायरे में राजनीति करती है और भाजपा, राजनीति के दायरे में गवरनेंस। इसे समझिये तो समझ आएगा कि आखिर क्यों कांग्रेस विपक्ष में असफल है और भाजपा सरकार में।

कांग्रेस का मूल डीएनए नेहरूवियन है। यानी वेलफेयर, सोशलिज्म, सुनने की क्षमता, और किसी ड्रास्टिक चेंज से परहेज करना, जो अचानक सामाजिक, आर्थिक सन्तुलन को अस्थिर कर दे। वह क्रांतिबाजी से बचती है। याद कीजिये, वह सुभाष से असहमत है, वह रॉयल इंडियन नेवी में विद्रोह के नेताओं को समर्थन देने से इनकार करती है। इसलिए कि कोई भी क्रांति या एंटी एस्टबलिशमेंट सेंटीमेंट फैलाना, अंततः सोसायटी को उठापटक और अराजकता की ओर ले जाना है। जिस संवैधानिक तन्त्र को इसी काँग्रेस ने खड़ा किया है, उस पर वह हमला कैसे करे। इसलिए उसकी राजनीति, गवरनेंस की सीमाओं में है। अब वह सत्ता में रहे, या विपक्ष में।

जब वह सत्ता में होती है तो अधिक से अधिक, मुसलमानों को खुश करने के लिए कोर्ट का फैसला पलट सकती है, किसी निरापद स्थान पर हिंदुओं को खुश करने के लिए मन्दिर का शिलान्यास करवा सकती है। मगर विपक्ष में रहने पर 'वहीं बनाएंगे' जैसे बाल हठ पर मस्जिद नही तोड़ सकती। जितना चाहे जनेऊ दिखा ले, दंगे नही भड़का सकती। वह आपको भड़काने के लिए जघन्य वीडियो वायरल करने का खेल नहीं खेल सकती।

दूसरी तरफ जनसंघ/बीजेपी के इतिहास में सत्ता सर्वदा से अलभ्य थी। ऐसे में सत्ता के बंधन, एस्टबलिशमेंट की मजबूरियां, राजधर्म, और व्यवस्था को बनाना उसके सर की बला नहीं थी। असल में यह पूरा कॉडर ही इंडियन एस्टबलिशमेंट के विरुद्ध पला बढ़ा है।

एक-एक कार्यकर्ता, एंटी एस्टबलिशमेंट है। एक सीट पाने या बचाने के लिए किसी भी हद तक जाना उसकी शिक्षा में है। लोकतन्त्र में बोलने की आजादी लेकर यह कैडर बेखटके व्यवस्था और उसके प्रतीकों के विरुद्ध जहर उगलता रहा। नेहरू, संविधान, तिरंगे के प्रति यह पुराना जहर ही है, जो शाखाओं और क्लोज्ड सर्कल से निकलकर, अब आपके व्हाट्सप पर तैरता है। ये एक्सट्रीम ऐक्शन और कट्टरता, विपक्ष होने का ट्रेडमार्क बन गया। विपक्ष का यह ट्रेडमार्क द्रविड़ राजनीति से उत्तर भारत के क्षेत्रीय दलों ने भी अपनाया। किसी का बहाना हिन्दू धर्म रहा, तो किसी का भाषाई उपराष्ट्र, तो किसी का जातीय शोषण। हमने हमेशा गैरजिम्मेदार विपक्ष देखा है। उसे एस्टेबलिशमेंट पर प्रहार करते ही देखा है।

लेकिन फिर हमने एक दिन बिसात पलट दी। टेलीविजन पर एक क्रांति का हिस्सा बने। पीछे पीछे ऊंचे सुर में 'सबका साथ सबका विकास' का नारा भी आया। जनता ऊंचा सुनती ही है, सुन लिया। विपक्ष सत्ता हुआ या सत्ता विपक्ष। सात साल हो गए, सत्ता अपने विपक्षी एक्स्ट्रिमिज्म में ही फंसी है। हर फैसला सीटों के गणित और चुनावी मजबूरियों के दायरे में है। और विपक्ष है कि गवरनेंस की जिम्मेदारी भूल नहीं पा रहा है।

मजा देखिये। विपक्ष कोविड से लड़ने की नीतियां ट्वीट कर रहा है, पत्र लिख रहा है, ऑक्सीजन का जुगाड़ कर रहा है। सत्ता अपनी पुरानी तासीर से विवश, सुझाव फाड़कर फेंक रही है और ऑक्सीजन देने वालों की राह में रोड़े अटका रही है, उन पर मुकदमे चला रही है। देश का गृहमंत्री विपक्ष से पूछता है कि तुमने क्या किया? फिर बाद में सरकार डस्टबिन से वही कागज निकालकर पढ़ती है, लागू करती है। यह इतिहास की ऐसी अनोखी सरकार है, जिसे आज तक यकीन ही नहीं हुआ कि वही सिस्टम है। खुद सिस्टम होकर, सिस्टम को ताने दे रही है।

गजब का तमाशा है। आदतन गवर्न करने वाले के पास गवर्नमेंट नहीं है और आदतन विपक्ष के पास अपोजीशन नहीं है। मालिक, यानी जनता अपनी आदतों से मजबूर है। हम चाहते हैं कि गैस महंगी हो गयी, यह बात विपक्ष आकर हमें बताये। हमारी जेब खाली हो गयी है, तो राहुल गांधी उसके लिए आंदोलन करें। दवा और आक्सीजन के अभाव में आप और आपके परिजन मर जायेंगे, इसके लिए कांग्रेस आपको सचेत करे। वे चक्का जाम करें, वे अनशन करें, वे ही क्रांति करें। हम कुछ न करें, केवल वोट दें। हमे विपक्ष मुर्दा दिखता है, इसलिए कि कपड़े फाड़कर नारे लगाते और पीएम को चूड़ियां भेजते कांग्रेसी, मीडिया पर नजर नही आते। फंडेबाजी, हो हल्ले, गैरजिम्मेदाराना बयानबाजी को विपक्ष का काम समझा जाता है। खरीद फरोख्त, गुण्डई, खोखले भाषण और नौटंकी को राजनैतिक चातुर्य समझा जाता है।

इसी को योग्यता समझकर, इनाम में हम उन्हें गवरनेंस की जिम्मेदारी से नवाजते हैं। हमने सोशल डिवीजन, खरीद फरोख्त और गुंडागर्दी से सरकार बनाने को पैनेपन, बुद्धिमत्ता का पैमाना समझ रखा है। ऐसी राजनीति में राहुल गांधी क्या पूरी कांग्रेस 100% पप्पू है, नो डाऊट।

लेकिन जीना मरना हमें है, तो हमें ही राजनीति और गवरनेंस का फर्क पकड़ना होगा। वैसे भी आजाद देश के 74% साक्षरों को बेसिक बात समझाने के लिए भड़काऊ कार्यक्रमों, आंदोलनों और घर घर प्रचार की जरूरत क्यों है? इस निराशा, क्षोभ, बेबसी को विपक्ष के स्पार्क प्लग की जरूरत क्यों है?

यह सही है कि माहौल में निराशा है, अपार गुस्सा है, किसी विपक्ष के लिए यह मौका बढ़िया है। पर ऐसे विस्फोटक मिश्रण में आम दिनों के विपक्ष की तरह, कांग्रेस से चिंगारी फूंकने की आशा मत कीजिये। राहुल गांधी को इसके कोलेटरल डैमेज का अंदाजा है। वे चुनाव का इंतजार करेंगे। अफसोस, कि अगर फिर हारे तो फिर इंतजार ही करेंगे, पर एस्टबलिशमेंट पर गैरजिम्मेदाराना प्रहार नही करेंगे। मन मसोसकर मुझे स्वीकारना पड़ता है कि सोनिया, मनमोहन या राहुल जैसे लोगों की ये तासीर नहीं है।

खुद समझिये, विकल्प जांचिए, भविष्य में झांकिये। उम्मीदें बदलिये, लक्ष्य बदलिये, कोर्स करेक्शन कीजिये। उंचा सुनना छोड़िये, मद्धिम कराहटें सुनिये। आने वाले दौर में पॉलिटिक्स नहीं, गवरनेंस के लिए जनादेश दीजिये। विपक्ष तैयार है, आप कब तैयार होंगे?

सोचिए वरना गंगा, एक और लाश झेलने से मना तो नही कर रही है।

'आपकी लाश' ❑

उत्तर भारतीय हिन्दू/दक्षिण भारतीय हिन्दू

दो विपरीत दिशाओं की ओर जाता हुआ हिन्दू समाज

❑ अशोक वाजपेयी

शिकागो स्थित एक लेखक-पत्रकार बन्धु ने मेरा घण्टे भर का एक लम्बा इण्टरव्यू लिया, जिसमें से एक प्रश्न यह था कि महामारी के प्रकोप और प्रभाव से भारतीय समाज में क्या बदलेगा. इस प्रश्न का उत्तर देना आसान नहीं था. अगर समाज का एक बड़ा और निर्णायक अंग सत्ता, इस दौरान अधिक संवेदनशील, अधिक संवादप्रिय, अधिक सहायक होने के बजाय संवेदनहीन रहा; सारी दिखावटी भावुकता के बावजूद, निर्मम और षड्यन्त्रकारी बना रहा; अविचारित निर्णयों द्वारा उसने लाखों का जीवन संकट में डाल दिया; लगातार झूठ बोलने की अपनी आदत को पल भर के लिए विश्राम नहीं दिया; खोखले वायदे करने से विरत नहीं रहा; असहमतों और प्रश्नवाचक लोगों के प्रति असहिष्णु बना रहा; जिसके लिए रोगग्रस्त और मृतक व्यक्ति नागरिक नहीं सिर्फ आंकड़े हैं, जिनसे खिलवाड़ किया जा सकता है। अपने से उसका स्वभाव-चरित्र-व्यवहार बदलेगा, ऐसी उम्मीद नहीं की जा सकती. सत्ताधारी शक्तियां धर्म-जाति-सम्प्रदाय आदि के ऊपर भारतीय जन को जन के रूप में देखेंगी, इसका भी कोई आभास नहीं है. सत्ता तनाव-दबाव में भले आयी, बदलेगी नहीं.

अब रहा समाज. उसमें राहत-मदद-चिन्ता-सहयोग की जो धर्म-जाति-सम्प्रदाय मुक्त सामुदायिकता उभरी और अभी भी सक्रिय है, उसका बना रहना ज़रूरी तो है पर यह आसान नहीं होगा. देर-सवेर सत्ता उसे खंडित-बाधित-दण्डित करने से बाज़ नहीं आयेगी. उत्तर प्रदेश में अस्पताल या दवाई या आक्सीजन आदि के अभाव की शिकायत करने वालों के खिलाफ़ पुलिस ने कार्रवाई की है. असहमति, प्रश्नवाचकता, सेवा को सत्ता अपराध बनाने पर उतारू है और इसलिए इस नयी सामुदायिकता को, ऐसे प्रहारों को झेल सकने की वीरता और साहस दिखाने होंगे. युवा वर्ग, दुर्भाग्य से, अभी भी भक्तों और प्रश्नवाचकों में बंटा हुआ है. उनके बीच झड़पें होती रही हैं और शायद वे भविष्य में और तीख़ी हों, इसका प्रयत्न किया जायेगा. दूसरी तरफ़, जब भयानक और अभूतपूर्व बेरोज़गारी और पूरी तरह से चरमरायी अर्थव्यवस्था सामने होगी तो भक्तों का आंख मूंदकर 'सब ठीक है' का भाव पोसना कठिन होगा. लाखों की संख्या में जिन लोगों ने, कुप्रबन्धन के कारण, अपने परिजन खोये हैं, उनका क्रोध भी किसी न किसी तरह अभिव्यक्त होगा. वह सकारात्मक और लोकतांत्रिक दिशा ले, यह ज़रूरी होगा अन्यथा वह दिग्भ्रष्ट होकर अकारथ जा सकता है.

हर व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के लिए संभावित ख़तरा है और हमें एक-दूसरे से भौतिक दूरी हर हालत में बनाये रखनी है, यह मानसिकता हमारे सामाजिक आचरण को प्रभावित-परिवर्तित करेगी. ख़ासकर प्रदर्शनकारी कलाओं पर इसका गहरा दुष्प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि उनका सौन्दर्यशास्त्र तो दर्शकों-श्रोताओं की सक्रिय और जीवन्त उपस्थिति पर ही निर्भर रहा है. हमें संवाद के नये तरीके खोजने होंगे. हम आदतन भूलते रहते हैं और ऐसी शक्तियां सक्रिय हैं, जो चाहती हैं कि हम सब कुछ भुला दें. तो एक कुशंका यह जागती है कि हम इस प्रकोप को और उसने हमें जिस सांसत में डाला, उसे भूल जायें. यह भारतीय समाज और लोकतंत्र दोनों के लिए दुर्भाग्यपूर्ण और घातक होगा. प्रार्थना करनी चाहिए कि ऐसा न हो.

हो सकता है, यह कहना थोड़ा अपरिपक्व जान पड़े, पर हमें कोरोना महामारी के बाद क्या करना चाहिए इस पर सोचना शुरू कर देना चाहिए. इतना तो अब जगज़ाहिर है कि हम महामारी से कारगर ढंग से, तैयारी-संवेदनशीलता-ज़िम्मेदारी से निपटने में बुरी तरह से विफल हुए हैं. लाखों लोग उतना बीमारी से नहीं मरे, जितना कुप्रबन्ध के कारण मरे हैं. जो कुछ बच पाये हैं, वह हमारी लोक स्वास्थ्य व्यवस्था के कारण ही, जिसमें वर्तमान सत्ता ने प्रायः कुछ भी अपने सात वर्षों के कार्यकाल में नहीं जोड़ा है. यह भी स्पष्ट है कि हमें मंदिर और अन्य क़िस्म के पूजा-स्थल नहीं, अस्पताल और स्वास्थ्य केन्द्र चाहिए. यह भी अब दुखद रूप से प्रमाणित है कि हमारी सत्ता ने विशेषज्ञों और वैज्ञानिकों की सलाह अनसुनी कर इस महामारी को अधिक मरणान्तक बनाया है. यह भी कि इस दौरान राजनीति द्वारा नीमहकीमी करने की कोशिश, जिसके अन्तर्गत गोबर और गोमूत्र आदि के लेपन-सेवन आदि की सलाह दी गयी, बुरी तरह से घातक साबित हुई है.

दुनिया भर में एक तरह का वैज्ञानिक मतैक्य उभरा है कि कोरोना वायरस अभी कुछ बरस रहेगा. इसलिए उससे निपटने के लिए व्यापक प्रबन्ध और सावधानियां ज़रूरी होंगी. एक संगठित और सेवा-भावी समुदाय के रूप में सिखों ने रास्ता दिखाया है. इस दौरान सभी गुरुद्वारों ने सीधे या परोक्ष रूप से पीड़ित लोगों की लगातार अथक मदद की है. दिल्ली में एक गुरुद्वारे ने अपना परिसर सुसज्जित अस्पताल में बदल दिया है, जहां बिस्तरों, आक्सीजन, दवाइयों आदि की सुविधाएं हैं और मुफ्त हैं. स्वर्ण मंदिर अकाल तख़्त ने निर्णय लिया है कि पंजाब में हर कोरोना पीड़ित की चिकित्सा पर आने वाला पूरा ख़र्च वे उठायेंगे और पूरा इलाज निःशुल्क होगा. नान्देड़ के गुरुद्वारे ने घोषणा की है कि पिछले पचास वर्षों में जो धनराशि और सोना वहां चढ़ावे में आया है, वह अस्पताल बनाने और लोकस्वास्थ्य पर ख़र्च किया जायेगा. लखनऊ के इमाम ने इमामबाड़े को अस्थायी अस्पताल में बदलने का फ़ैसला किया. मसजिदें और मंदिर भी मदद के लिए आगे आये हैं. यह भी उल्लेखनीय है कि यह सभी सहायता मुक्त भाव से, बिना धर्म-जाति-सम्प्रदाय को विचार में लाये, की गयी है.

हमारे धार्मिक संस्थानों के पास, विशेषतः

हिन्दू मंदिरों के पास, अपार धनराशि है. अगर क़ानूनन ऐसा करना संभव न हो तो कम से कम सामाजिक-नैतिक रूप से यह अनिवार्य होना चाहिए कि इस सम्पदा का अधिकांश आगे से लोकस्वास्थ्य की सुविधाएं बढ़ाने में ख़र्च किया जायेगा. कई मंदिर जैसे तिरुपति, कई गिरजाघर अपने अस्पताल चलाते ही हैं. अगर इसे व्यापक कर दिया जाये तो लोकस्वास्थ्य को सिर्फ सरकारी साधनों पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा और उसके लिए अतिरिक्त साधन जुट जायेंगे. पीड़ित लोगों की सेवा से बड़ा कोई धार्मिक आदर्श किसी धर्म में नहीं हो सकता. विजड़ित पड़ी सम्पदा सामाजिक हित में काम आ जायेगी. सिख तो रातोंरात अस्पताल बनाने में माहिर हैं, क्योंकि उनमें गहरा सेवा-भाव हमेशा सजग-सक्रिय रहता है. अन्य धर्मावलंबियों को भी ऐसा करना चाहिए.

शिकागो स्थित लेखक-पत्रकार मयंक छाया से एक वीडियो बातचीत में मुझे लगा कि भारत में हिन्दू समाज अब दो विपरीत दिशाओं में जाता दीख पड़ रहा है. दुर्भाग्य से यह फांक, मोटे तौर पर, उत्तर भारतीय हिन्दू और दक्षिण भारतीय हिन्दू के बीच पड़ रही है. उत्तर भारतीय हिन्दू समाज लगातार हिंसक-घृणाचालित-बलात्कारी-हत्यारी मानसिकता की गिरफ्त में आता जा रहा है, जबकि दक्षिण भारतीय हिन्दू समाज अन्य धर्मों के सम्प्रदायों के साथ संवाद-सहकार और आपसी समझदारी में विश्वास करता है. यह फांक, एक और दुर्भाग्य है, कि राजनीति में भी प्रगट हो रही है. हिन्दुत्व नामक राजनैतिक विचारधारा के प्रभाव में उत्तर भारत तेज़ी से भगवा रंग में रंग गया है, जबकि इस विचारधारा का दक्षिण भारत पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ा है. दोनों ही ओर कुछ महत्वपूर्ण अपवाद भी हैं. मसलन उत्तर प्रदेश का गौरव उत्तर भारत में अन्यत्र इतना प्रबल-व्यापक नहीं है. उधर कर्नाटक में हिन्दुत्व की कुछ पैठ बनी है. कालान्तर में यह तक हो सकता है कि दक्षिणी हिन्दू अधिक प्रामाणिक हिन्दू माना जाने लगे और उत्तरी हिन्दू अधिक अप्रामाणिक. इसका एक भयानक दुष्परिणाम यह होगा कि दक्षिण के सामने हिन्दी हिन्दुओं की अप्रामाणिक भाषा मानी जाकर असह्य और त्याज्य हो जाये. ❑

नेहरू तो बहाना हैं, गांधी ही निशाना हैं

❑ प्रदीप कुमार

आज देश में गांधी से ज्यादा बहस नेहरू पर हो रही है। सड़क से संसद तक नेहरू ही छाए हैं। आखिर ऐसा क्यों? क्या हैं इसके पीछे के निहितार्थ? दरअसल वक्त के आइने में नेहरू का कद इतना बड़ा है कि वह हर उस शख्स के रास्ते में खड़ा हो जाता है, जो नेहरू जैसा या उससे भी बड़ा बनने की ख्वाहिश रखता है और यहीं से शुरू हो जाती है नेहरू पर निशाना लगाने की कवायद। पर यहां खेल कुछ और ही है। कहीं पर निगाहें और कहीं पर निशाना लगाया जा रहा है। हमला नेहरू पर, लेकिन मकसद है गांधी को ध्वस्त करना। कुछ लोगों को मेरी बात अटपटी लग सकती है, पर इस बात से कतई इंकार नहीं किया जा सकता कि उन्हें गांधी के विचारों से डर लगता है। यही वजह है कि वे उन सब रास्तों को बंद करना चाहते हैं, जो लोगों को गांधी की सोच तक ले जाते हैं। तमाम किंतु परन्तु के बावजूद नेहरू अवाम को कायरता के खोल से बाहर लाने की मुहिम में गांधी के सबसे बड़े सिपहसालार थे। सांस्कृतिक पुनर्जागरण, सामाजिक चेतना और दमन के प्रतिकार के लिए जिस हथियार का गांधी ने सफल प्रयोग किया, वह हर उस ताकत को डराती है, जो यथास्थिति और अधिनायकवाद की पोषक हैं।

नेहरू के बारे में एक अजीब कहानी गढ़ी जा रही है, जिसके मुताबिक नेहरू का यही योगदान है कि उन्होंने कभी सुभाष चन्द्र बोस का, कभी सरदार पटेल का तो कभी भगत सिंह का अपमान किया, मानो वह आज़ादी की लड़ाई में नहीं थे, बल्कि कुछ नेताओं को अपमानित करने के लिए ही लड़ रहे थे। क्या नेहरू इन लोगों का अपमान करते हुए ब्रिटिश हुकूमत की जेलों में नौ साल रहे थे...? इन नेताओं के बीच वैचारिक दूरी, अंतर्विरोध और अलग-अलग रास्ते पर चलने की धुन को एक दूसरे के अपमान के फ्रेम में परोसने की मुहिम चलाई जा रही है। अगर इनकी मानें तो उस दौर में हर कोई ब्रिटिश हुकूमत से नहीं, एक दूसरे से लड़ रहा था। सच तो यह है कि यही राष्ट्रीय आंदोलन की खूबी थी। अलग-अलग विचारों वाले एक से एक कद्दावर नेता थे। यह खूबी गांधी की थी, उनके बनाए दौर की थी, जिसके कारण कांग्रेस के अंदर और कांग्रेस के बाहर राष्ट्रीय सोच वाले नेताओं से भरा आकाश था।

एक और कोशिश की जा रही है कि अगली पिछली जितनी भी समस्याएं हैं, सब की सब नेहरू के माथे मढ़ दो। प्रकारान्तर से ये गांधी को कठघरे में खड़ा करने का प्रयास है। दरअसल गांधी इतने व्यापक और मजबूत हैं कि उन पर सीधे हमला करना घातक साबित हो सकता है। खासकर ऐसे समय में जब साम्यवाद के खात्मे के बाद पूंजीवाद की दीवार भी भरभरा रही हो और दुनिया में गांधी मॉडल के प्रति आकर्षण और रुझान बढ़ रहा हो, तब गांधी पर हमला जोखिम वाला हो सकता है। यह आवाज अब और मजबूत हो रही है कि गांधी ही विकल्प हैं। ऐसे में नेहरू समेत उन तमाम नेताओं पर या तो हमला किया जा रहा है या उनमें आपसी मतभेद को अपमान का जामा पहनाकर उस सोच को कमजोर करने की कोशिश की जा रही है, जिसे गांधी के सांस्कृतिक जागरण, राजनीतिक चेतना और दमन के प्रतिकार ने ताकत दी। वे जानते हैं कि गांधी को मारने के बाद गांधी की वैचारिकी ज्यादा मजबूत और ज्यादा प्रासंगिक हो गयी है। उसे सीधे नहीं, अगल बगल से खत्म करो। ❑

1 मई : श्रमिक दिवस पर विशेष

ढाबों पर 'छोटू' बनकर यातना झेलने वाले बच्चे अपने घरों के बड़े लड़के हैं!

❑ हिमांशु सिंह

'बच्चे काम पर जा रहे हैं,

हमारे समय की सबसे भयानक पंक्ति है यह।

भयानक है इसे विवरण की तरह लिखा जाना।

लिखा जाना चाहिए इसे सवाल की तरह,
काम पर क्यों जा रहे हैं बच्चे?
क्या अंतरिक्ष में गिर गई हैं सारी गेंदें?
क्या दीमकों ने खा लिया है
सारी रंग बिरंगी किताबों को?
क्या काले पहाड़ के नीचे दब गए हैं सारे खिलौने?
क्या किसी भूकंप में ढह गई हैं
सारे मदरसों की इमारतें?

राजेश जोशी की लिखी ये पंक्तियां किसी भी संवेदनशील व्यक्ति को असहज कर देने के लिए पर्याप्त हैं. पशु-पक्षी या इंसान, कोई भी हो, सभी को अपनी बुनियादी जरूरतों, मसलन भोजन, सुरक्षा इत्यादि की पूर्ति के लिए कुछ-न-कुछ श्रम करना पड़ता है. सभी जीव अपनी अगली पीढ़ी को इन ज़रूरतों को पूरा करने के लिए कुछ निश्चित समय तक प्रशिक्षण और सुरक्षा देते हैं. शेरनी अपने बच्चों को शिकार करना, हिरन अपने बच्चों को शिकारियों से बचना और पक्षी अपने बच्चों को दाना चुगना सिखाते हैं.

अपनी आगामी पीढ़ियों को प्रशिक्षण और सुरक्षा देने के इसी मोर्चे पर मनुष्य का सभी जीवों से श्रेष्ठ होने का दावा खारिज हो जाता है. दरअसल, मनुष्य ही एकमात्र ऐसा प्राणी है, जो अपने कम उम्र के बच्चों को जीवन के लिए आवश्यक प्रशिक्षण और सुरक्षा दिये बिना उनसे उत्पादन करवाता है. इस उत्पादन का अपने हित में प्रयोग करता है. यहां बात हो रही है बाल श्रम की.

बच्चे किसी भी देश और समाज का भविष्य होते हैं. अतः उनकी समुचित सुरक्षा, पालन-पोषण, शिक्षा एवं विकास का दायित्व राष्ट्र और समुदाय का होता है. कालांतर में यही बच्चे समाज और राष्ट्र के विकास का आधार स्तंभ बनते हैं. ऐसे में इसे त्रासदी ही कहा जाएगा कि जहां एक ओर बाल-कल्याण से संबंधित अनेक विषयों पर विश्व जनमत गंभीरता से विचार कर रहा है, वहीं दूसरी ओर बाल श्रमिकों की समस्या तेज़ी से बढ़ रही है.

बाल श्रम जैसे महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर तमाम अंतर्राष्ट्रीय संगठनों और लगभग सभी देशों की राय कमोबेश एक जैसी होने के बावजूद उनकी मान्यताएं भिन्न-भिन्न हैं. अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार वे सभी कार्य जो बच्चों से उनका बचपन छीनें तथा उनके विकास को बाधित करें, बाल श्रम के अंतर्गत आते हैं, जबकि यूनिसेफ बाल श्रम को अधिक स्पष्ट तरीके से परिभाषित करता है. इसके मुताबिक हर वह बच्चा बाल श्रमिक है, जो 5 से 11 वर्ष की आयु में एक सप्ताह में कम-से-कम एक घंटे आर्थिक क्रियाकलाप या 28 घंटे घरेलू श्रम करता है. वहीं 12 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए सप्ताह भर में 14 घंटे के आर्थिक क्रियाकलाप या संयुक्त रूप से कम-से-कम 42 घंटे के आर्थिक क्रियाकलाप एवं घरेलू श्रम को बाल श्रम की संज्ञा दी गई है.

भारतीय शासन व्यवस्था में बाल श्रम (निषेध एवं नियमन) संशोधन विधेयक, 2016 के आने से पूर्व देश में 14 साल से कम उम्र के बच्चों से किसी भी प्रकार की मज़दूरी कराना तथा 18 वर्ष तक के किशोरों का जोखिमपूर्ण क्षेत्रों में कार्य करना बाल श्रम समझा जाता था. वस्तुतः इस संशोधन विधेयक के आने के बाद 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को घरेलू या पारिवारिक उपक्रमों, विज्ञापन एवं मनोरंजन उद्योग तथा खेलों में श्रम करने की अनुमति प्रदान की गई है, बशर्ते उनके आज़ाद बचपन की गतिविधियों में खलल न पड़े और उनका विकास बाधित न हो.

आधुनिक विश्व में बाल श्रम का चलन औद्योगिक क्रांति के शुरुआती दिनों से ही देखा जा सकता है. विश्व श्रम संगठन की रिपोर्ट के अनुसार पूरी दुनिया में लगभग 16 करोड़ 80 लाख बाल श्रमिक हैं, जिनमें से लगभग 8 करोड़ 50 लाख बाल श्रमिक जोखिमपूर्ण क्षेत्रों, जैसे- खदान एवं भट्ठों इत्यादि में कार्यरत हैं. तुलनात्मक रूप से विकासशील देशों में बाल श्रमिकों की संख्या सबसे अधिक है. एशिया और अफ्रीका के कई देशों में यह अपने भयावह रूपों में विद्यमान है.

भारत में विभिन्न शिल्पों समेत लगभग 19 तरह के उद्योग हैं, जिनमें बाल श्रमिकों का सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है. अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत का प्रत्येक 11वां बच्चा बाल श्रमिक है. भारत में विश्व के सर्वाधिक बाल श्रमिक हैं. इस तथ्य के पीछे अनेक कारण हैं, जिनमें प्रमुख हैं- बड़ी जनसंख्या, व्यापक गरीबी, अशिक्षा तथा भ्रष्टाचार. दरअसल, यही वे कारण हैं जो बाल श्रम के अन्य कारणों को आधार देते हैं.

भारत दुनिया का दूसरी सबसे बड़ी आबादी वाला देश है. यहां की आबादी का एक बड़ा हिस्सा गरीब और अशिक्षित है. बड़ी आबादी के चलते जहां बच्चा होश संभालते ही खुद को रोटी, कपड़ा और छत जैसी मूलभूत ज़रूरतों की खींचातानी के बीच पाता है, वहीं गरीबी जैसे कारण उसे इस परिस्थिति से बचने की इतनी भी मोहलत नहीं देते कि वह अपनी शुरुआती पढ़ाई भी पूरी कर सके. रही-सही कसर विद्यालयों की कमी और महंगी शिक्षा पूरी कर देती है और अगर इन सभी समस्याओं से लड़कर वह अपनी शिक्षा पूरी कर भी लेता है, तो सामने उसे बेरोज़गारी की भीषण समस्या मुंह बाए खड़ी मिलती है.

ऐसे में बुनियादी ज़रूरतों के लिए संघर्ष

करने वाला एक गरीब आदमी अपने बच्चे को सालों-साल चलने वाली औपचारिक शिक्षा दिलाने के बजाय किसी मैकेनिक उस्ताद के गैराज में भर्ती कराना कहीं बेहतर समझता है. उसे अपने बच्चे का 'हुनरमंद' होना 'शिक्षित' होने से कहीं बेहतर लगता है. यही वे परिस्थितियां होती हैं, जिनके चलते पांच साल की आयु तक के छोटे-छोटे बच्चे 'कमाऊ पूत' बन जाते हैं.

इस बात को अगर गहराई से समझा जाए तो निर्धन एवं असहाय माता-पिता का इस तरह सोचना पूर्णतः निराधार भी नहीं है. अति निर्धनता की स्थिति में जीवन-यापन करने वाले परिवेश में आजीविका चलाने के लिए बच्चों की भागीदारी इतनी आवश्यक हो जाती है कि अगर बच्चे अपने परिवार के जीविकोपार्जन में सहयोग न करें तो निश्चित ही उनके परिवार की स्थिति चरमरा जाएगी.

बाल श्रम नियोक्ताओं के हित, बंधुआ मज़दूरी, संरक्षकों की अशिक्षा, जागरूकता का अभाव, अल्पायु में विवाह तथा संबंधित कानूनों का सख्ती से पालन न किया जाना बाल श्रम को बढ़ावा देने वाले कारणों में शुमार हैं. सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश पी.एन. भगवती के अनुसार, ''बाल श्रमिकों से संबद्ध अधिकतर कानून कागज़ों तक ही सीमित हैं और इनका क्रियान्वयन लगभग शून्य है. उद्योगों में बाल श्रमिकों की मौजूदगी ही इन कानूनों का मखौल उड़ाती है.''

भारतीय संविधान का अनुच्छेद-24, 14 वर्ष तक के किशोरों के जोखिमपूर्ण श्रम पर रोक लगाता है, जबकि अनुच्छेद 21(क) 6 से 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा का अधिकार मुहैया कराता है. इसी प्रकार अनुच्छेद-39 बच्चों के संपूर्ण विकास को राज्य की ज़िम्मेदारी घोषित करता है. इस विषय में अनुच्छेद-45 और अनुच्छेद 51(क) का भी विशेष महत्त्व है.

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से अब तक बाल मज़दूरी के उन्मूलन के लिए विभिन्न प्रावधान अस्तित्व में आए, लेकिन इन सबके बावजूद देश में बाल श्रम भयावह रूप में विद्यमान है. इसके कई कारण रहे हैं. इनमें से मुख्य कारण यह है कि जब गरीब माता-पिता के बच्चों की बात आती है, तो नीति-निर्माताओं की सोच यह रहती है कि बाल श्रमिक इसलिए काम कर रहा है, क्योंकि यह उसके परिवार के अस्तित्व का मसला है. उनके मतानुसार बाल श्रम एक कठोर सच्चाई है. यह मान्यता कि बाल श्रम अपरिहार्य है, भारत में बाल श्रम रोकने के सभी उपायों को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है. यही बात मुख्य रूप से इस दृष्टिकोण के लिए भी ज़िम्मेदार है कि सबसे अच्छा तरीका है कि बाल श्रम के सबसे ज्यादा शोषक तरीकों पर आघात किया जाए. विभिन्न खतरनाक उद्योगों में काम कर रहे बच्चे ही बाल श्रमिक के रूप में सबसे स्पष्ट नज़र आते हैं. फलस्वरूप इन उद्योगों के ही बाल श्रमिकों पर ज्यादा ज़ोर दिया गया और अन्य क्षेत्रों, खासतौर पर कृषि क्षेत्र में संलग्न बाल श्रमिकों की उपेक्षा हुई.

बाल श्रम को देखने के कई तरीके हैं, साथ ही इस विषय पर अलग-अलग लोगों की समझ भी अलग-अलग है. परंतु वास्तविकता यह है कि बच्चों के काम, बाल श्रम और खतरनाक काम आदि में फर्क करने से असल मुद्दा धुंधला ही होता है. क्या हथकरघे का काम बंधुआ मज़दूरी से कम खतरनाक होता है? यदि एक बच्चा मज़दूरी के दौरान मवेशी चराता है तो माना कि यह बाल श्रम की श्रेणी में आता है, लेकिन खुद अपने परिवार के लिए ऐसा करने पर क्या उसे बाल श्रम कहा जाएगा? मान लीजिए मज़दूरी की दर ज्यादा है और मज़दूरी की स्थितियां अच्छी हैं, तो यह कौन तय करेगा कि कौन-सा श्रम एक बच्चे के लिए बेहतर है? घरेलू काम, जैसे- पानी भरना, शिशुओं की देखभाल इत्यादि को किस वर्ग में रखा जाएगा? इसे काम कहा भी जाएगा या नहीं? कई लोग तो इन कार्यों को श्रम ही नहीं मानते.

वस्तुतः जो भी बच्चा स्कूल नहीं जाता, किसी-न-किसी काम में लगा ही दिया जाता है. कुछ गैर-सरकारी संगठन बाल श्रम की इस परिभाषा के साथ दृढ़ भी हैं कि 'जो बच्चा स्कूल से बाहर है, वह बाल श्रमिक है.' एम.वी.एफ. का अनुभव रहा है कि गरीब-से-गरीब अभिभावक भी अपने बच्चों को बेहतर शिक्षा दिलाना चाहते हैं. इस तरह देखें तो शिक्षा के लिये जागरूकता की कमी से ज्यादा गरीबी बाल-श्रम के लिए ज़िम्मेदार है। एक विचारणीय प्रश्न यह भी है कि ऐसा क्यों होता है कि जब कामगार बच्चों की बात आती है तभी शिक्षा की प्रासंगिकता की बात की जाती है? प्रांसगिकता की समस्या से तो पूरी शिक्षा प्रणाली ग्रस्त है। अतः इसे काम करने वाले बच्चों को स्कूल से बाहर रखने का बहाना नहीं माना जा सकता।

दरअसल, ज़मीनी हकीकत भी यही है कि जब बात बाल श्रम के खात्मे की होती है तो न तो शिक्षा की प्रांसगिकता का मुद्दा और न ही स्कूलों का स्वरूप ही महत्त्वपूर्ण रह जाता है। हमारे लिए विचारणीय पहलू यही होना चाहिए कि बच्चे को काम के बाहर रखा जा रहा है या नहीं? बच्चा विद्यालय में है या नहीं? शायद ही कोई व्यक्ति (चाहे वह बेरोज़गार ही क्यों न हो.) साक्षरता और निरक्षरता में से स्वेच्छा से अपने लिये निरक्षरता का विकल्प चुने।

शिक्षा प्रणाली रोज़गार के अवसर के रूप में जो नहीं दे पाती, व्यक्ति के आत्मगौरव को बढ़ाकर उससे कहीं ज्यादा भरपाई कर देती है. ऐसे में सरकार को काम करने वाले बच्चों के लिए गरीबी की दलील और शिक्षा की अप्रासंगिकता की धारणा से बचना होगा. बाल श्रम के संदर्भ में सारी बहस से इतर एक विचारणीय बिंदु ये है कि बाल श्रम के संदर्भ में हमारी अपनी सोच क्या है? कितनी बार हमने उन उत्पादों का बहिष्कार किया, जो बाल श्रम से बने थे? कितनी बार हमने उन ढाबों पर रुकना मुनासिब न समझा, जहाँ तमाम 'छोटू' अपना जीवन गंवा रहे थे? क्या कभी हमने विचार किया कि ढाबों पर 'छोटू' बनकर शारीरिक और मानसिक यातना झेलने वाले ये बच्चे दरअसल अपने घरों के बड़े लड़के हैं? बाल श्रम जैसे अमानवीय चलन को लेकर हमारी गंभीरता इसी बात से उजागर हो जाती है कि विश्व में सर्वाधिक बाल श्रमिकों की आबादी वाले हमारे देश में आज तक एक भी चुनाव बाल श्रमिकों के मुद्दे पर नहीं लड़ा गया है.

फिलहाल, सकारात्मक नज़रिये के साथ पूरी क्षमता से इस समस्या से लड़ने की ज़रूरत है. साथ ही ज़रूरत है मानवीय संवेदनाओं को कायम रखते हुए जीवजगत में अपनी श्रेष्ठता पुनः हासिल करने की, जो बाल श्रम की मौजूदगी के चलते संदेह के घेरे में है. ❑

भारत का भविष्य

❑ जस्टिस मारकण्डेय काटजू

आज भारत एक पिछड़ा और गरीब देश है, जिसमें एक तरफ व्यापक गुरबत, बेरोज़गारी, महंगाई और कुपोषण है, तो दूसरी तरफ अच्छे स्वास्थ लाभ और अच्छी शिक्षा का अभाव है।

इस देश को कैसे एक शक्तिशाली व विकसित देश में परिवर्तित करें, ताकि यहां के लोग खुशहाल हों और अच्छा जीवन व्यतीत कर सकें? यही सबका उद्देश्य होना चाहिए। इस विषय पर गहरे चिंतन की आवश्यकता है।

औद्योगिक क्रांति, जो इंग्लैंड में 18वीं सदी में शुरू हुई और उसके बाद सारी दुनिया में फैल गयी, से पहले हर देश में सामंती समाज होते थे। सामंती अर्थव्यवस्था में पैदावार के साधन इतने पिछड़े थे कि उनके द्वारा बहुत कम उपज हो सकती थी। भारत में हल से, यूरोप में घोड़ों से और वियतनाम में भैंसे से ज़मीन जोती जाती थी। सामंती समाज में केवल कुछ ही लोग (राजा, जमींदार आदि) सम्पन्न हो सकते थे, बाक़ी को ग़रीब रहना होता था।

यह परिस्थिति औद्योगिक क्रांति के बाद बिलकुल बदल गयी। अब आधुनिक उद्योग इतने बड़े और शक्तिशाली होते हैं कि उनसे इतनी पैदावार हो सकती है कि अब किसी को ग़रीब रहने की आवश्यकता नहीं है। दुनिया के सभी लोग खुशहाल जिन्दगी पा सकते हैं। इस परिस्थिति के बावजूद दुनिया के 70-75% लोग ग़रीब हैं।

वास्तव में इस दुनिया में दो दुनिया है, विकसित देशों की दुनिया (उत्तर अमरीका, यूरोप, जापान, ऑस्ट्रेलिया और चीन आदि) और अविकसित देशों की दुनिया, जिसमें भारत भी आता है। अब भारत को विकसित देश बनाने का काम कैसे किया जाय, यही मुख्य समस्या है। आज भारत के पास वह सब है, जिससे हम महान ऐतिहासिक परिवर्तन कर सकें। वैज्ञानिकों और अभियंताओं का एक विशाल समूह और अपार प्राकृतिक सम्पदा है। परन्तु हम फिर भी ग़रीब हैं, ऐसा क्यों?

इसे समझने के लिए हमें कुछ गहराई में जाना होगा और अर्थशास्त्र समझना होगा, महान रूसी नेता लेनिन ने कहा था 'राजनीति संकेंद्रित अर्थशास्त्र होती है' (Politics is concentrated economics)।

श्रम का दाम पूरी पैदावार के दाम का बड़ा अंश होता है। इसलिए जिस उद्योगपति या व्यापारी के पास सस्ता श्रम है, वह अपने उस प्रतिद्वंदी से सस्ता माल बेच सकता है। जिसके पास महंगा श्रम है, वह प्रतिस्पर्धा में उसे हरा सकता है।

उदाहरणस्वरूप, चीन में 1949 में क्रांति हुई। 1949 के पहले चीन एक पिछड़ा, ग़रीब तथा सामंती देश था, परन्तु 1949 के बाद चीन के नेताओं ने एक विशाल, आधुनिक, औद्योगिक आधार का निर्माण किया। अपने सस्ते श्रम के कारण चीन के विशाल उद्योगों ने दुनिया भर के बाज़ारों पर कब्ज़ा कर लिया। पश्चिमी देशों के उद्योग चीनी उद्योगों से प्रतिस्पर्धा नहीं कर सके, क्योंकि पश्चिमी श्रम महंगा है, इसलिए कई पश्चिमी उद्योग बंद हो गए।

इसलिए जिस देश में सस्ता श्रम है, वह अगर एक विशाल औद्योगिक आधार बना दे तो वह जिन देशों में महंगा श्रम है, उनको प्रतिस्पर्धा में हरा सकता है। भारत के पास तो चीन से भी सस्ता श्रम है, इसलिए अगर भारत विशाल औद्योगीकरण कर सके तो सोचिए इन विकसित देशों का क्या होगा, जहां महंगा श्रम है? उनके अनेक उद्योग बंद हो जाएंगे और लाखों, करोड़ों कर्मचारियों को बर्खास्त करना पड़ेगा। क्या ऐसा विकसित देश होने देंगे? क़तई नहीं।

विकसित देशों में एक गुप्त, अलिखित नियम है कि भारत को कभी विकसित देश नहीं बनने देना है, अन्यथा अपने सस्ते श्रम के कारण भारतीय उद्योग सस्ता माल बेचेंगे और फलस्वरूप विकसित देश, जिनमें महंगा श्रम है प्रतिस्पर्धा का सामना नहीं कर पाएंगे और बंद हो जाएंगे। ऐसी आपदा से वह कैसे बच सकते हैं? इससे बचने का तरीक़ा है, भारतीयों को आपस में धर्म, जाति, भाषा, नस्ल आदि के आधार पर लड़वाना, जो बहुत समय से हो रहा है।

हमारी राजनीति काफी हद तक धर्म और जाति के वोट बैंक पर चलती है और हमारे नेता विदेशी तत्वों की कठपुतली हैं, जो बाँटो और राज करो की नीति चलाते हैं। इसका पूरा उद्देश्य है कि भारत विराट औद्योगिक राष्ट्र के रूप में न उभर सके।

हमें इस षड़यंत्र का पर्दाफाश करना है और एक ऐतिहासिक जनसंघर्ष करना है, जिसके फ़लस्वरूप एक ऐसी राजनैतिक व्यवस्था का निर्माण हो सके, जिसके अंतर्गत तेज़ी से औद्योगीकरण हो और हम्मारी जनता को खुशहाल जिन्दगी मिल सके।

ऐसा ऐतिहासिक जनसंघर्ष आसान नहीं होगा। इसमें बड़ी बाधाएं आएँगी और कई उतार-चढ़ाव तथा तोड़-मरोड़ होंगे। यह लम्बा चलेगा और इसमें बहुत कुर्बानियां देनी होंगी, परन्तु और कोई विकल्प भी नहीं है। ❑

झारखंड में प्राथमिक शिक्षक आंदोलित

राष्ट्रीय युवा आंदोलन बिहार और उत्तर प्रदेश के बाद अब झारखंड में शिक्षक अभ्यर्थियों के साथ आंदोलित है।

JTET 2016 बहाली मोर्चा के अध्यक्ष परिमल कुमार कहते हैं कि, 'झारखंड में प्राथमिक शिक्षकों की भारी कमी है और इस व्डफमी को पूरा करने के लिए 2016 अर्हता परीक्षा उत्तीर्ण अभ्यर्थी सालों से इंतजार में हैं। झारखंड निर्माण के पश्चात 'झारखंड प्रारंभिक विद्यालय शिक्षक नियुक्ति नियमावली 2012' के तहत् मात्र दो बार JTET (झारखंड शिक्षक पात्रता परीक्षा) का आयोजन किया गया है। 2013-2014, 2015 में काउंसलिंग के माध्यम से नियुक्ति प्रक्रिया संपन्न हुई। जबकि JTET 2016 उत्तीर्ण अभ्यर्थी 5 साल गुजर जाने के बाद भी नियुक्ति के इंतजार में बेरोजगार बैठे हुए हैं।'

-ऋषभ रंजन

124A
विरोध को कुचलने का हथियार बन रही है देशद्रोह की धारा

❑ विजय शंकर सिंह

देश में राजद्रोह और देशद्रोह के मुकदमों की बाढ़ आयी हुई है। सरकारों ने अक्सर इस कानून का इस्तेमाल अपने आलोचकों और विरोधियों को सबक सिखाने के औजार के रूप में किया है। आजादी के पहले का यह कानून ब्रिटिश राज में भी बहस का विषय था। संविधान सभा ने भी इस पर गहन विमर्श किया, लेकिन आज तक यह लोकतंत्र विरोधी कानून सरकारों का प्रिय बना हुआ है। इस आलेख में इस कानून के इतिवृत्त की विवेचना कर रहे हैं विजय शंकर सिंह। वे अवकाश प्राप्त आईपीएस अधिकारी हैं और इन दिनों सोशल मीडिया पर मुखर हैं। **-सं.**

एक अच्छी खबर यह है कि, वरिष्ठ पत्रकार विनोद दुआ पर दर्ज सेडिशन का मुकदमा सुप्रीम कोर्ट ने खारिज कर दिया है। यह सरकार हर उस व्यक्ति के पीछे पड़ी है, जो उससे सवाल पूछता है, उसकी कैफियत और हैसियत पर सवाल उठाता है और संविधान के मौलिक अधिकारों में दिए गए अभिव्यक्ति की आज़ादी के अधिकार का एक नागरिक के रूप में सदुपयोग करता है। विनोद दुआ के खिलाफ दर्ज मुक़दमे का खारिज होना, सरकार की जिद, अहंकार और नकली इकबाल पर एक संवैधानिक चोट है।

अभी यूपी में रिटायर्ड आईएएस अफसर, सूर्य प्रताप सिंह के खिलाफ 6 मुक़दमे प्रदेश के विभिन्न जिलों में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा दर्ज कराए गए हैं। उन पर यह आरोप है कि उन्होंने कोविड संक्रमण, अस्पतालों की बदइंतजामी, गंगा में बहते शव, और सरकार की नाकामी पर ट्वीट कर के सरकार से कुछ चुभते हुए सवाल पूछ लिये थे। एक लोकतांत्रिक सरकार का यह कर्तव्य है कि वह इन सवालों का जवाब देती और अपना पक्ष रखती, पर उसने सूर्य प्रताप सिंह को, धौंस में लेने के लिए, उन पर मुक़दमे दर्ज कर दिए। सूर्य प्रताप सिंह को भी, इलाहाबाद हाईकोर्ट की लखनऊ बेंच से राहत मिली है और अदालत ने उनकी गिरफ्तारी पर रोक लगा दी है।

अब जरा पिछले सालों में सेडिशन के दर्ज मुकदमों का विवरण देखिये। किसान आंदोलन के दौरान सेडिशन के कुल 6 मुक़दमे दर्ज किए गए। सीएए आंदोलन के दौरान सेडिशन के कुल 25 मुक़दमे दर्ज किए गए। यूपी में हाथरस गैंगरेप के बाद सेडिशन के कुल 27 मुक़दमे दर्ज किए गए। 2014 के बाद सेडिशन के 405 दर्ज मुकदमों में से 96% वे मुक़दमे हैं, जिनमें किसी राजनीतिक नेता की आलोचना की गयी है। इनमें से 149 वे मुक़दमे हैं, जिनमें प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की आलोचना की गयी है। 144 वे मुक़दमे हैं, जिनमें उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ की आलोचना की गयी है। इन दर्ज मुकदमों में उन मुकदमों की संख्या 28% है, जो सुप्रीम कोर्ट के दिशा निर्देशों के विपरीत दर्ज किए गए हैं। सेडिशन के अधिकतर मुकदमे देश में चल रहे विभिन्न आंदोलनों के संदर्भ में दर्ज किए गए हैं। जैसे बीजेपी शासित राज्यों में 3700 लोगों पर सीएए विरोधी आंदोलन में शरीक होने के कारण सेडिशन का मुकदमा दर्ज किया गया। सेडिशन के सबसे अधिक मुकदमे दर्ज करने वाले 5 राज्यों में 4 राज्य बिहार, यूपी, कर्नाटक और झारखंड भाजपा शासित हैं। झारखंड अब गैर भाजपा शासित राज्य हो गया है। उत्तर प्रदेश में 2010 के बाद सेडिशन के दर्ज 115 मुक़दमों में से 77% योगी आदित्यनाथ के कार्यकाल के हैं।

भारतीय न्याय प्रणाली ब्रिटिश न्याय प्रणाली से विकसित हुई है। 1861 में बने तीन कानूनों, भारतीय दंड संहिता, आईपीसी या इंडियन पेनल कोड, दंड प्रक्रिया संहिता, सीआरपीसी क्रिमिनल प्रोसीजर कोड और भारतीय साक्ष्य अधिनियम यानी इंडियन एविडेंस एक्ट से भारतीय आपराधिक न्याय व्यवस्था की नींव पड़ी। इसी समय आपराधिक न्याय व्यवस्था के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में इंडियन पुलिस ऐक्ट को संहिताबद्ध किया गया, जिससे आधुनिक पुलिस व्यवस्था की शुरुआत हुई।

124A के वर्तमान स्वरूप के लिए महान स्वतंत्रता संग्राम सेनानी बाल गंगाधर तिलक को श्रेय देना चाहिए। तिलक को अंग्रेज़, भारतीय असंतोष का जनक या फादर ऑफ इंडियन अनरेस्ट कहते थे। 1897 में उन पर चले एक मुक़दमे ने इस धारा पर राजद्रोह बनाम देशद्रोह की बहस खड़ी कर दी। यह धारा संज्ञेय और अजमानतीय बनायी गयी।

पहले यह धारा पढ़ लें

'जो कोई बोले गए या लिखे गए शब्दों द्वारा या संकेतों द्वारा, या दृश्यरूपण द्वारा भारत में विधि द्वारा स्थापित सरकार के प्रति घृणा या अवमान पैदा करेगा या पैदा करने का प्रयत्न करेगा या अप्रीति प्रदीप्त करेगा, या प्रदीप्त करने का प्रयत्न करेगा, वह आजीवन कारावास से, जिसमें जुर्माना जोड़ा जा सकेगा या तीन वर्ष तक के कारावास से, जिसमें जुर्माना जोड़ा जा सकेगा या जुर्माने से दंडित किया जाएगा।'

1870 में यानी आईपीसी के संहिताबद्ध होने के 9 साल बाद यह धारा आईपीसी में जोड़ी गयी। हालांकि यह विचार 1835 के ड्राफ्ट पेनल कोड, जो लार्ड थॉमस मैकाले ने तैयार किया था, में आ चुका था। जब यह धारा जोड़ी गयी तो इसके जोड़ने का उद्देश्य ब्रिटिश राज के विरुद्ध किसी भी प्रकार के जन असंतोष को दबाना था, जो 1857 के विप्लव को सफलतापूर्वक कुचल देने के बाद भी देश में कहीं न कहीं उभर आया करता था।

धारा 124A आईपीसी के अंतर्गत पहला मुकदमा 1891 में दर्ज हुआ, जो बंगाल से निकलने वाले एक अखबार बंगोबासी के संपादक के विरुद्ध था। बांग्ला अखबार बंगोबासी ने 'सहमति की उम्र' के नाम से एक लेख लिखकर ब्रिटिश सरकार के एज ऑफ कंसेंट बिल 1891 की तीखी आलोचना की थी। 19 मार्च 1891 को पारित इस कानून के अनुसार लड़कियों के साथ यौन संबंध बनाने की उम्र 10 से बढ़ाकर 12 साल कर दी गयी थी। इसमें भी विवाहित और अविवाहित का कोई भेद नहीं रखा गया था। 12 साल से कम उम्र की विवाहित महिला से यौन संबंध बनाना भी अपराध की श्रेणी में डाल दिया गया। पुनर्जागरण के अनेक अभियानों के बाद भी तत्कालीन बंगाल में बाल विवाह जोरों से प्रचलित था। बंगोबासी ने इस कानून के साथ ब्रिटिश राज की भी तीखी आलोचना की। इस आलोचना के कारण इस पर इस धारा के अंतर्गत मुकदमा कायम किया गया। लेकिन जब यह मुकदमा अदालत में पहुंचा तो इस पर जजों में एक राय नहीं बनी। संपादक ने भी माफी

मांग ली और मुकदमा खारिज हो गया।

1897 में तिलक के लेखों ने अंग्रेजी हुकूमत की नींद उड़ा दी। तिलक ने अपने पत्र केसरी में मराठा साम्राज्य के संस्थापक शिवाजी के संदर्भ लेकर कई लेख लिखे, जिनमें ब्रिटिश हुकूमत की तीखी आलोचना थी। पुणे के अंग्रेज़ शासकों को लगा कि तिलक के लेख को पढ़कर ही चापेकर बंधुओं ने रैंड और उसके सहयोगी आयस्टर की हत्या की है। यह घटना 22 जून 1897 को घटी थी। चापेकर बंधुओं, वासुदेव और हरि चापेकर के खिलाफ तो हत्या का मुकदमा चला और उन्हें फांसी की सज़ा हुई, लेकिन तिलक के खिलाफ 124A के अंतर्गत राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया।

इस धारा में असंतोष, डिसफेक्शन के बजाय इसे डिसलॉयल्टी पढ़ा गया और यह गैर वफादारी, राज यानी क्राउन का विरोध माना गया। इस प्रकार असंतोष राजद्रोह में तब्दील हो गया। इस मुक़दमे में जो बहस हुई है, उस पर लिखी एक पुस्तक द ट्रायल ऑफ तिलक, तिलक के कानूनी ज्ञान और उनकी तर्कशीलता को प्रमाणित करती है। पहली बार इस मुक़दमे में घृणा, शत्रुता, नापसंदगी, मानहानि आदि जैसे भाव, जो जनता को किसी भी सरकार से असंतुष्ट करते हैं, राज्य या सरकार के विरुद्ध परिभाषित कर के राजद्रोहात्मक माने गये। तिलक को इस अपराध में सज़ा हो गयी। वे पहले व्यक्ति थे, जिन्हें अपने लेखों के कारण राजद्रोह की सज़ा भुगतनी पड़ी।

एक साल बाद उनकी सहायता के लिए जर्मन अर्थशास्त्री और न्यायविद मैक्स वेबर सामने आए। उनके मुक़दमे की अपील में नए तरह से बहस हुई और सेडिशन को नए सिद्धांत के अनुरूप व्याख्यायित किया गया। यह सिद्धांत स्ट्रेची का था, जिनके अनुसार उपनिवेशवादी ताकतें अक्सर अपने अपने उपनिवेश में आज़ादी पसंद लोगों के विरुद्ध उन्हें प्रताड़ित करने के लिए राजद्रोह का बेजा इस्तेमाल करती रहती हैं, जबकि यह एक प्रकार की अभिव्यक्ति है। इस बार तो तिलक एक साल के बाद ही छूट गए। पर केसरी में ही लिखे एक अन्य लेख के कारण उनके खिलाफ 1908 में फिर 124A का मुकदमा दर्ज हुआ, जिसके तहत 1909 में उन्हें 6 साल की सज़ा मिली, जो उन्होंने मांडले जेल में काटी। इसी मुक़दमे में तिलक ने अपना पक्ष रखते हुए यह कालजयी वाक्य कहा था, *'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूंगा।'* इस वाक्य को राजद्रोही माना गया।

1922 में यही मुकदमा महात्मा गांधी जी पर चला। गांधी जी ने अपने पत्र 'यंग इंडिया' में ब्रिटिश शासन की नीतियों की तगड़ी आलोचना करते हुए कई लेख लिखे थे। कुछ लेख किसानों की समस्या, जो उन्होंने चंपारण में निलहे ज़मीदारों के अत्याचार को देखा था, पर लिखे थे। गांधीजी ने इस ऐक्ट को ही जनविरोधी और दमनकारी बता दिया और यह भी कह दिया कि उन्होंने ब्रिटिश राज के विरुद्ध लेख लिखा है। यह राजद्रोह है तो वे राजद्रोही हैं। गांधीजी को भी छह साल की सज़ा मिली थी।

भगत सिंह के ऊपर भी यही मुकदमा चला था। हालांकि उनके ऊपर सांडर्स हत्याकांड का भी मुकदमा चला था। जबकि भगत सिंह का नाम इस मुक़दमे की एफआईआर में नहीं था और राजद्रोह साबित भी नहीं हो पाया था। पर भगत सिंह अंग्रेजों के लिए बड़ा खतरा बन सकते थे और अंग्रेज़ उनकी वैचारिक स्पष्टता और मेधा को जान गए थे। उनका एक ही उद्देश्य था भगत सिंह को फांसी पर लटका देना, जो उन्होंने 23 मार्च 1931 को कर भी दिया।

आज़ादी के बाद जब संविधान सभा की कार्यवाही चल रही थी, तो 29 अप्रैल 1947 को इस धारा पर लंबी बहस हुई। क्योंकि यह धारा कहीं न कहीं संविधान में दिए गए मौलिक अधिकारों को अतिक्रमित करती है। सरदार पटेल ने केवल भाषण और नारों को सेडिशन मानने से इनकार कर दिया। कम्युनिस्ट पार्टी के नेता सोमनाथ लाहिड़ी ने कहा कि ब्रिटेन में भी जहां से यह धारा आयातित की गयी है, सरकार के विरुद्ध कुछ भी तीखी बात या नीतियों की निंदा की जाय, वह तब तक राजद्रोह नहीं माना जाता है, जब तक कोई ऐसा उपक्रम न किया गया हो, जो देश और राज्य के विरुद्ध युद्धात्मक हो। संविधान सभा में लंबी बहस के बाद यह सहमति बनी कि केवल आलोचनात्मक और निंदात्मक भाषणों के आधार पर किसी के विरुद्ध यह आरोप नहीं लगाया जा सकता है। यह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के विरुद्ध होगा। अतः इस धारा में संशोधन किये गए। 2 दिसंबर 1948 को सभी सदस्यों की तरफ से सेठ गोविंद दास ने इस संशोधन पर प्रसन्नता व्यक्त की।

संविधान सभा ने यह मान लिया कि सेडिशन शब्द केवल बाल गंगाधर तिलक को दंडित करने के लिए गलत तरह से परिभाषित और व्याख्यायित किया गया था, जबकि असंतोष और राजद्रोह में अंतर है। संविधान सभा के सभी सदस्य स्वाधीनता संग्राम के सेनानी थे। एक सदस्य ने कहा कि 'जन असंतोष को मुखर कर के ब्रिटिश राज की आलोचना में तो हम सब शामिल थे। अगर आलोचना का यह मार्ग बाधित कर दिया जाएगा तो सरकारें निरंकुश हो जायेंगीं। अब हमारे पास अभिव्यक्ति की आज़ादी का मौलिक अधिकार है और एक फ्री प्रेस है। अब हमें इस धारा से मुक्ति पा लेनी चाहिए।

26 नवम्बर 1949 को पूर्ण हुए संविधान ने सेडिशन शब्द से तो मुक्ति पा ली और एक स्वस्थ लोकतांत्रिक देश के लोगों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के रूप में एक नायाब मौलिक अधिकार दे दिया पर आईपीसी में यह धारा बनी रही।

1950 में सुप्रीम कोर्ट के दो फैसलों ने सरकार को इस धारा में आवश्यक संशोधन करने पर विवश कर दिया। पहला मुकदमा आरएसएस के पत्र ऑर्गनाइजर से जुड़ा था, और दूसरा एक अन्य मुकदमा क्रॉसरोड मैगजीन का था। इन दोनों ही पत्रिकाओं में तत्कालीन सरकार की तीखी आलोचना और निंदा की गयी थी। सुप्रीम कोर्ट ने इन मामलों में सरकार का पक्ष लिया और स्वतंत्रता के शैशव को देखते हुए संपादकों से ऐसी आलोचना से परहेज बरतने को कहा। कोई दण्डात्मक कार्यवाही नहीं हुई। अदालत ने इसे देशद्रोह नहीं माना बल्कि एक गैर जरूरी आलोचना माना। इस फैसले की आलोचना हुई और इस धारा में एक संशोधन लाया गया।

सरकार की आलोचना और निंदा, जो आज कुछ लोगों द्वारा देशद्रोह समझ ली गयी है, के संबंध में तब जवाहरलाल नेहरू ने संसद में संशोधन पेश करते समय जो कहा था, वह पढ़ना दिलचस्प होगा। उन्होंने कहा था—

'Take again Section 124A of the Indian Penal Code. Now so far as I am concerned that particular section is highly objectionable and obnoxious and it should have no place both for practical and historical reasons, if you like, in any body of laws that we might pass. The sooner we get rid of it the better.'

हालांकि नेहरू द्वारा इन शब्दों में कही गयी अपनी बात के बावजूद यह प्रावधान आईपीसी में बना रहा, लेकिन नेहरू के संसद में कहे गए शब्द और उनकी भावनाएं इस जुर्म के ट्रायल के समय अदालतों द्वारा कई बार स्वीकार किये गये और 1950 में ही धारा 124A के अंतर्गत दर्ज किये गए मुकदमों में कुछ उच्च न्यायालयों ने अभियुक्तों को बरी भी किया।

आज़ादी के बाद 124A का सबसे चर्चित मुकदमा बिहार के केदारनाथ का था, जो केदारनाथ बनाम बिहार राज्य 1962 के नाम से प्रसिद्ध है। केदारनाथ ने एक सार्वजनिक सभा मे तत्कालीन कांग्रेस सरकार की तीखी आलोचना करते हुये बरौनी में कहा था—

'To-day the dogs of CID are

loitering around Barauni. Many official dogs are sitting even in this meeting. The people of India drove out the Britishers from this country and elected these Congress goondas to the gaddi.'

यहां ये शब्द सीआईडी, इंटेलिजेंस और खुफिया शाखा की पुलिस के लिए कहे गये हैं। पहले खुफिया शाखा भी सीआईडी का ही एक अंग हुआ करती थी। अब वह एक स्वतंत्र विभाग है। उन्होंने अपने इस भाषण में कांग्रेस पार्टी और सरकार को भ्रष्टाचारी, काला बाज़ारी, पूंजीवादी और ज़मींदारों की प्रतिनिधि बताते हुए एक क्रांति कर के देश से भगा देने का आह्वान किया था।

केदारनाथ के इस भाषण पर स्थानीय पुलिस थाने द्वारा खुफिया रिपोर्ट के आधार पर धारा 124A का एक मुकदमा दर्ज हुआ और उनके खिलाफ अदालत में आरोप पत्र दाखिल हुआ, जिसमें ट्रायल के बाद उन्हें सजा मिली।

अपनी सज़ा के खिलाफ केदारनाथ ने पटना हाईकोर्ट में अपील की, पर उन्हें उक्त अपील में कोई राहत नहीं मिली, बल्कि हाईकोर्ट से भी उनकी सज़ा बहाल रही। हाईकोर्ट ने सेडिशन पर कहा कि यह धारा उन अप्रिय और भड़काऊ शब्दों के लिए दण्डित करने की शक्ति देती है, जिससे कानून और व्यवस्था की गंभीर समस्या उत्पन्न हो सकती है और हिंसा भड़क सकती है। सेडिशन के लिए हाईकोर्ट ने सज़ा तो बहाल रखी पर इस धारा के संबंध में जजों की राय इस प्रकार थी।

'It has been contended that a person who makes a very strong speech or uses very vigorous words in a writing directed to a very strong criticism of measures of Government or acts of public officials, might also come within the ambit of the penal section. But, in our opinion, such words written or spoken would be outside the scope of the section.'

हाईकोर्ट ने यह तो माना कि केदारनाथ द्वारा दिया गया भाषण आक्रामक और भड़काऊ है और सज़ा भी बहाल रखी, पर इसे राजद्रोह मानने से इनकार कर दिया। यह एक अजीब फैसला था। राजद्रोह का जब दोष ही नहीं बनता तो सज़ा किस बात की? केदारनाथ ने इस फ़ैसले के खिलाफ सुप्रीम कोर्ट में अपील की।

सुप्रीम कोर्ट में इस अपील की सुनवाई के लिए एक संविधान पीठ का गठन हुआ। संविधान पीठ ने पहली बार सेडिशन पर एक महत्वपूर्ण फैसला दिया, जिससे यह धारा परिभाषित हुई। सुप्रीम कोर्ट के फैसले के अनुसार, आज़ादी मिलने तक 124A के बारे में दो विचार थे, जो इस धारा के संबंध में फेडरल कोर्ट और प्रिवी काउंसिल के फैसलों पर आधारित थे। 1949 में प्रिवी काउंसिल, जो सभी कॉमनवेल्थ देशों की साझी और सर्वोच्च अपीलीय अदालत थी, को भारत सरकार ने एक कानून बनाकर समाप्त कर दिया था। आज़ादी के पहले फेडरल अदालतों की यह धारणा थी कि, 'लोक व्यवस्था अथवा लोक व्यवस्था के भंग हो जाने की आशंका ही इस प्रावधान को दंड संहिता में जोड़े जाने का आधार है, इसलिए फेडरल अदालतों के फैसलों के अनुसार, अकेले उत्तेजक और भड़काऊ शब्दावली युक्त भाषणबाजी भी किसी हिंसक घटना को जन्म दे सकती है, अतः सेडिशन का आरोप बनता है।'

सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ ने फेडरल कोर्ट के इन फैसलों की जब संविधान के अनुच्छेद 19A के परिप्रेक्ष्य में व्याख्या की तो, इस प्रावधान को 19A (बोलने की आज़ादी और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता) के विपरीत तो पाया, लेकिन इसे संविधान विरुद्ध नहीं मानते हुये रद्द नहीं किया। हालांकि केदारनाथ को इस अपराध का दोषी नहीं पाया गया और उन्हें बरी कर दिया।

इस मुक़दमे में सुप्रीम कोर्ट ने सेडिशन कानून को बनाये रखने की बात कह कर उसे संविधान विरुद्ध नहीं माना है, लेकिन अदालत ने यह भी साफ कर दिया, जैसा सुप्रीम कोर्ट के प्रसिद्ध वकील फली एस नारीमन कहते हैं—

'केवल सरकार की आलोचना, चाहे वह कितनी भी निर्मम और घृणा भरी हो, के आधार पर किसी के विरुद्ध सेडिशन का आरोप नहीं लगाया जा सकता है।'

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि धारा 121, 122 और 123 आईपीसी में राज्य के विरुद्ध युद्ध की घोषणा, युद्ध का षड्यंत्र और राज्य प्रमुख की हत्या या उन पर हमले की बातें हैं तो यह सही मायने में देशद्रोह है। इन प्रावधानों पर कभी कोई विवाद नहीं उठा है।

जबकि धारा 124A, जिसमें केवल बोले गए या लिखे गए शब्दों द्वारा या संकेतों द्वारा या दृश्यरूपण द्वारा भारत में विधि द्वारा स्थापित सरकार के प्रति घृणा या अवमान पैदा करने की अभिव्यक्ति को देशद्रोह या राजद्रोह या सेडिशन कहा गया है, जब से बनी है, तब से विवाद उठता रहा है और आज तक बना हुआ है। हर बार अदालतों में इसकी वैधानिकता को चुनौती दी गयी है। इस धारा की परिभाषा को देखते हुए इस बात की संभावना अधिक है कि इसका सत्ता या पुलिस अपने हित में दुरुपयोग करे। इसके सबसे अधिक शिकार वे अखबार, पत्रिकाएं, टीवी चैनल और पत्रकार बनते हैं और आगे भी बन सकते हैं, जो सरकार के सजग और सतर्क आलोचक हैं। विरोधी दल के वे नेता भी शिकार हो सकते हैं, जो सत्तारूढ़ दल से वैचारिक आधार पर भिन्न मत रखते हैं और स्वभावतः सरकार के कटु आलोचक हैं।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता किसी भी लोकतंत्र की जान है। 1215 में इंग्लैंड के मैग्ना कार्टा, 1688 में इंग्लैंड की ग्लोरियस रिवोल्यूशन और 1789 में हुई फ्रांस की क्रांति ने मनुष्य के जीवन में अभिव्यक्ति और जीवन के उदार सिद्धांतों का बीजारोपण किया। यह धारा कहीं न कहीं उस उदार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार के विपरीत ठहरती है। हर मुक़दमे में विरोधाभास उभर कर सामने आया है। तिलक, गांधी और भगत सिंह तथा साथियों को दी गयी सज़ाएं कानूनी आधार पर नहीं, बल्कि राजनैतिक और प्रशासनिक आधार पर दी गयी थीं, क्योंकि तब हम गुलाम थे। गुलाम भला आज़ादी के सपने कैसे देख सकता है! पर अब हम एक सार्वभौम, स्वतंत्र और विधि द्वारा शासित कल्याणकारी राज्य हैं, तो ऐसे राज्य से अपेक्षाएं भी होंगी और कभी न कभी, कहीं न कहीं, किसी न किसी बिंदु पर सरकार की आलोचना भी होगी। अतः केवल इस आधार पर कि किसी ने सरकार की निर्मम आलोचना, लेख लिख कर और भाषण देकर कर दिया है, उसे देशद्रोही ठहरा दिया जाए, यह एक अधिनायकवादी कदम होगा।

सुप्रीम कोर्ट के जज जस्टिस चंद्रचूड़ ने यूपी सरकार के ऊपर तंज कसते हुए कहा कि, 'अखबारों में गंगा में बहते शवों की खबरों पर देशद्रोह का कोई मुकदमा सरकार ने अभी दर्ज किया है या नहीं।'

सुप्रीम कोर्ट को चाहिए कि देश भर में दर्ज देशद्रोह के मुकदमों की समीक्षा के लिए एक न्यायिक समिति बनाये और अभिव्यक्ति की आज़ादी का हनन करते हुए देशद्रोह के जो मुकदमे दर्ज किए गए हैं, उन्हें ख़ारिज कर एक विस्तृत दिशा-निर्देश जारी करे। देश और देशद्रोह को जितना हल्का इस सरकार ने ज़रा ज़रा सी बात पर सेडिशन का मुकदमा दर्ज करके बना दिया है, उतना तो ब्रिटिश राज ने भी नहीं किया था। जनता को डरा कर उस पर राज नहीं किया जा सकता है, पर एक लोकतांत्रिक गवर्नेंस की यह छोटी सी, पर बेहद महत्वपूर्ण बात इस सरकार के लोगों को बिल्कुल समझ में नहीं आ रही है। ❑

मिट्टी सत्याग्रह अभियान

21 मार्च 2021 को कबीर की जन्मस्थली लहरतारा से जनकवि सुदामा प्रसाद पांडेय धूमिल के गाँव खेवली तक संयुक्त किसान मोर्चा वाराणसी के कार्यकर्ताओं ने मिट्टी संग्रह यात्रा के कार्यक्रम के माध्यम से किसान आंदोलन के समर्थन में अपनी एकजुटता प्रदर्शित की। कबीर उद्भव स्थल लहरतारा से निकली यात्रा खेवली गांव तक पहुंची। यात्रा के दौरान केंद्र की भाजपा सरकार द्वारा लाए गए किसान कानूनों के दुष्प्रभावों से लोगों को अवगत कराने के लिए पर्चा वितरण किया गया और जगह जगह पर नुक्कड़ सभाएँ आयोजित की गयीं।

मिट्टी संग्रह का कारण बतलाते हुए एक कार्यकर्ता ने कहा कि आज से 91 वर्ष पहले गांधी जी ने नमक के ऊपर कर लगाने के कानून के विरुद्ध सविनय कानून भंग का कार्यक्रम बनाया था। इसके बाद अलख जगी और पूरे देश में हजारों जगह लोगों ने नमक बनाया और अंग्रेजों के कानून को तोड़ दिया। आज हम सबके सामने एक वैसी ही परिस्थिति आन पड़ी है। बीजेपी की सरकार अपने पूंजीपति दोस्तों को किसानों की जमीन, उनकी फ़सल सब सौंप देना चाह रही है। किसानों के लिए लाये गये कानून अंग्रेजों के लाए गए नमक कानून जैसे ही जनविरोधी हैं। इसीलिए बापू के दांडी मार्च और नमक सत्याग्रह से प्रेरणा लेकर देश भर में लोग मिट्टी सत्याग्रह करने निकले।

12 मार्च 2021 से शुरू हुए मिट्टी सत्याग्रह कार्यक्रम में मोर्चा के कार्यकर्ताओं ने देश के पूर्व प्रधानमंत्री और जय जवान जय किसान का ऐतिहासिक नारा देने वाले लाल बहादुर शास्त्री की जन्मस्थली रामनगर के अलावा विभिन्न जगहों से मिट्टी संग्रह की।

सूफी संत कबीर के जन्मस्थान लहरतारा में साधु सुशील दास जी ने शहीद किसान स्मारक के लिए मिट्टी दान किया। लहरतारा क्षेत्र में जनसम्पर्क के दौरान वक्ताओं ने कहा कि ये वर्ष असहयोग आंदोलन के 100 वर्ष पूरे होने का भी है। ब्रिटिश हुकूमत को जैसे हमने एकजुट होकर भगाया था, ठीक वैसे ही आई.एम.एफ., विश्व बैंक और देशी विदेशी कारपोरेट के चक्कर में फँसे अपने देश को आज़ाद कराने के लिए कमर कसनी होगी। दुखद है कि देश में एक ऐसी सरकार है, जो रोज केवल यह सोचती है कि रेल, हवाई जहाज कम्पनी, कल कारखाने सब निजी हाथों में कैसे बेच दिए जायें। पेट्रोल, गैस मंहगे करके मध्यम वर्ग और गरीब की रसोई में सीधी डकैती की जा रही है।

वक्ताओं ने कहा कि जब प्रधानमंत्री हमसे आत्मनिर्भर होने को कह रहे थे और मीडिया, सुशांत सिंह राजपूत, रिया चक्रबर्ती और कंगना रनौत में व्यस्त थी, उसी समय भाजपा सरकार ने खेती किसानी के तीन कानून देश पर लाद दिए। ये तीनों कानून देशी-विदेशी अमीर कंपनियों को लाभ देने वाले हैं। कोरोना बाजार बंदी और आमदनी की तमाम दिक्कतों के बावजूद किसान अब तक आत्मनिर्भर था, लेकिन केंद्र सरकार द्वारा कानून में किये गए ये बदलाव किसानों की जिंदगी में बेहद बुरा असर लेकर आने वाले हैं। अब तक बीज, खाद, कीटनाशक पर कार्पोरेट का कब्जा था, अब कृषि उपज और किसानों की जमीन पर भी कार्पोरेट का कब्जा हो जाएगा। छुट्टा पशुओं के आतंक से परेशान किसान इन बड़े सींग और दांतों वाले धनपशुओं से कैसे अपनी जान बचा पाएगा? किसानों की आमदनी दुगुनी करने के वायदे के साथ सत्ता में आई भाजपा ने किसानों की फ़टी जेब भी कुतरने की ठान ली है।

खेवली गाँव में सुदामा प्रसाद पांडेय धूमिल के पैतृक आवास पर उनके सुपुत्र द्वय रत्न शंकर पांडेय एवं देवीशंकर पांडेय ने मिट्टी दान करके किसान आंदोलन के साथ एकजुटता प्रदर्शित की। रत्न शंकर पांडेय ने युवाओं का आह्वान करते हुए धूमिल जी की पंक्तियों से, स्वागत किया और कहा कि, हे भाई हे! अगर चाहते हो/कि हवा का रुख बदले/तो एक काम करो- हे भाई हे! संसद जाम करने से बेहतर है, सड़क जाम करो।

प्रभाकर सिंह ने किसान कानूनों को समझाते हुए प्राइवेट मंडी खोलने संबंधी पहले कानून के बारे में बताया कि सरकार कह रही है कि किसान अब अपनी फसल जहां चाहे, बेचने के लिए आजाद है। अब वह मंडी में बेचने के लिए मजबूर नहीं रहेगा। अब आप सोचिये, आज तक किसान जहां चाहता, वहां फसल बेचता ही था तो यह बिना मांगे जबरन आज़ादी किस बात की? जब मंडी समिति और एमएसपी का वजूद ही नहीं बचेगा तो किसान को मजबूरन अपनी फसल औने -पौने दाम में बेचनी होगी।

दूसरे बिल के बारे में समझाते हुए नन्दलाल मास्टर ने बताया कि कॉन्ट्रैक्ट फार्मिंग एक तरह से वह दिन लेकर आएगा, जैसा चम्पारण में सौ साल पहले नील की खेती में होता था। जमीन आपकी रहेगी, लेकिन कब, क्या, कैसे, कितना बोना है, ये सब कम्पनी मालिक बताएगा।

तीसरे 'आवश्यक वस्तु कानून' के विषय मे जागृति राही ने बताया कि इसके तहत सरकार की यह जिम्मेदारी थी कि जीवन यापन के लिए जरूरी चीजों जैसे, गेंहूं, चावल, दाल, आलू वगैरह के दाम पर वह नियंत्रण रखती थी। देश में कहीं अगर दाम अचानक बढ़े तो सरकार हस्तक्षेप करके दाम नियंत्रित करती थी, साथ ही यह व्यवस्था भी करती थी कि जरूरी चीजें सबको मिल पायें। नए कानून के बाद अब फैसला कंपनी और व्यापारियों के हाथ में होगा। उनके दाम बढ़ाने पर सरकार कोई रोकटोक नहीं करेगी। ठीक वैसे ही जैसे आज पेट्रोल, डीजल के दाम रोज बढ़ रहे हैं और मूल्य नियंत्रण हमारे हाथ में नहीं है, कहकर सरकार पल्ला झाड़ ले रही है।

कानून को बनाने वाली भाजपा सरकार की मंशा आपके सामने है। वह इसे संसद में पारित कराने की प्रक्रिया को लेकर भी ईमानदार नहीं थी। जनप्रतिनिधियों की आवाज को दबाया गया और इस बिल का विरोध करने वाले सांसदों को निलंबित कर दिया गया।

लोकतंत्र, जनता और तंत्र के बीच पारस्परिक संबंध से संचालित होता है। तंत्र के हर निर्णय में लोक, यानी जनता का हित होना चाहिए। लेकिन जब लाठियों के इस्तेमाल से जनता की आवाज को कुचला जाता है, तो लोकतंत्र खतरे में आ जाता है। आज किसान, मजदूर, नौजवान, महिलाएं सब खतरे में हैं और साथ ही खतरे में है वह लोकतांत्रिक व्यवस्था, जिसको हमने लाखों कुर्बानियां देकर अंग्रेजों को भगाने के बाद खड़ा किया था।

-कमलेश यादव

टुटुआपानी संकल्प

27 सालों से जारी एक जीवन-परब

नेतरहाट फील्ड फायरिंग रेंज विरोधी आंदोलन ने 22-23 मार्च 1994 को एक इतिहास रचा था। एक ओर मिलिटरी की गाड़ियाँ थीं। उनमें भरकर सैनिक गोलीबारी का अभ्यास करने आये थे। दूसरी ओर निहत्थे हजारों लोग उन्हें रोकने के लिए जमा थे। टुटुआपानी के इस मोर्चे से अंततः सेना की गाड़ियों को वापस लौटना पड़ा था। एक बार फिर 2004 में सेना के लोग यहाँ आये थे। संभवतः लोगों के विरोध और जागरूकता की स्थिति को आँकने के लिए। इस बार भी विरोध में अच्छी खासी संख्या में क्षेत्र की जनता जुटी थी। फिर सेना को वापस लौटना पड़ा था।

होना तो यह चाहिए था कि पहली बार उमड़े विराट जनसमूह को देखते हुए इस परियोजना को रद्द कर दिया जाता। किन्तु सरकार ने दूसरे जनजुटान के बाद भी अपना इरादा नहीं बदला। नेतरहाट फील्ड फायरिंग रेंज की अधिसूचना वापस नहीं ली गयी और वह 2022 तक प्रभावी है। शासन को झेलते रहने वाले समुदाय, सरकार के बयानों की असलियत बखूबी जानते हैं। यहाँ के लोगों ने अच्छी तरह समझ लिया था कि विरोध के ठंडा पड़ते ही कभी भी परियोजना का हमला हो सकता है। इस कारण 1994 के बाद से ही लगातार 22-23 मार्च को दो दिवसीय संकल्प दिवस आयोजित हो रहा है। हर साल 23 मार्च को लोग, जब तक परियोजना की अधिसूचना रद्द नहीं होती, तब तक संघर्ष जारी रखने के संकल्प के साथ अपने घर,गाँव वापस लौटते हैं।

इस दो दिवसीय आयोजन में पूरा रहे बिना इसकी खासियत को महसूस कर पाना तो नामुमकिन है ही, समझ पाना भी कठिन है। नामी - गिरामी व्यक्तित्वों की आभा में चमकते और उनके बोझ से भारी, भव्य उत्सवों के अभ्यस्त अनेक लोगों को यह आयोजन फीका और बेअसर भी लग सकता है। इस आयोजन के लिए किसी भी विशेष व्यक्ति को अलग से आमंत्रण नहीं भेजा जाता। कोई मुख्य और विशेष अतिथि या वक्ता नहीं होता। कार्यक्रम का आम आमंत्रण जारी होता है। जो आते हैं, उन्हीं में से कुछ अतिथियों को मौका दिया जाता है। उनका चयन केन्द्रीय समिति की एक टीम करती है। केन्द्रीय समिति के सदस्यों, स्थानीय साथियों और समर्थन में आये अतिथियों के मिले-जुले वक्तव्य का क्रम चलता है। जितने वक्तव्य होते हैं,लगभग उतनी ही गीत, नृत्य आदि की कला प्रस्तुतियाँ भी होती हैं।

टुटुआपानी मोड़ एक तिराहे पर स्थित है। यहीं वार्षिक संकल्प समावेश होता है। 22 की सुबह से गाँवों से लोग अपने जरूरी इंतजामों के साथ आने लगते हैं। चटाई, चादर, बरतन, अनाज आदि के साथ। पेड़ों के नीचे अपनी जगह जमा लेते हैं। दोपहर में तीन राहों पर, तीन तय क्षेत्रों के लोगों की पंक्ति सजती है। जान देंगे, जमीन नहीं देंगे; नेतरहाट फील्ड फायरिंग रेंज की अधिसूचना रद्द करो जैसे नारों से गूँजते ये तीनों जुलूस आकर एक जगह सभास्थल पर मिल जाते हैं। आंदोलन के प्रतीक गीत को सभी साथ साथ गाते और थिरकते हैं। उसके बाद सभा होती है। रात में कुछ फिल्में दिखाई जाती हैं और उसके बाद सामूहिक रात्रि जीवन का एक खास अहसास। खुले में,पेड़ों के नीचे, बिजली की हल्की रोशनी में परिजनों और मित्रजनों के हजारों समूहों का सहविश्राम।

दूसरे दिन सुबह लगभग 9 बजे से पुनः सभा का सिलसिला चल पड़ता है। तीन चार घंटे के बाद कार्यक्रम अपने मुकाम पर पहुँचता है। फिर सारे लोग संचालन की घोषणा के अनुसार अपनी तय राह पर पंक्ति में सजते हैं, नारे लगाते हुए बढ़ते हैं, एक जगह मिलते हैं। यह दृश्य बहुत ही आकर्षक और उत्साहवर्धक लगता है। नारे और गीतों के बाद सभी अपना हाथ आगे कर एक साथ संकल्प दुहराते हैं। जब तक नेतरहाट फील्ड फायरिंग रेंज की अधिसूचना रद्द नहीं होती, तब तक संघर्ष जारी रखने का तीन चार वाक्यों का संक्षिप्त और स्पष्ट संकल्प होता है।

बड़ी संख्या में सहभागिता तथा अटूट निरंतरता इस सालाना संकल्प की बेजोड़ खासियत है। सहभागिता में बहुत बड़ा उतार या चढ़ाव शायद ही रहा हो। पिछले साल कोरोना के वातावरण के कारण कार्यक्रम नहीं हुआ था। इस साल मास्क के इंतजाम के साथ यह कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। इस साल की जनसभा में इसी अंचल के कुछ हिस्से में व्याघ्र परियोजना के लिए गाँवों को हटाने की स्थानीय सामयिक समस्या पर प्राथमिकता से विचार रखा गया। इसके साथ ही वन अधिकार कानून, केन्द्र सरकार द्वारा लाये गये कृषि कानून और चल रहे किसान आंदोलन, सीएए-एनआरसी-एनपीआर, शराबखोरी की समस्या, युवाओं के रुझान और प्रश्न जैसे विषयों पर विचार आये।

केन्द्रीय जन संघर्ष समिति के बैनर और नेतृत्व में आंदोलन चलता है और उसी के संचालन में यह सालाना संकल्प होता है। विभिन्न स्तर की जन संघर्ष समितियों की भागीदारी से केन्द्रीय जन संघर्ष समिति बनायी जाती है। फील्ड फायरिंग रेंज परियोजना से दो जिलों के 245 गाँव हटाये जाने वाले हैं। यह क्षेत्र आदिवासी बहुल है। उराँव, असुर, बिरजिया जैसे अनेक जनजातीय समूह इस क्षेत्र में हैं। अच्छी खासी आबादी ईसाइयत से जुड़ी है। उग्रवादी समूहों और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संस्थानों की भी उपस्थिति है। इन जटिलताओं के बीच भी यह आंदोलन अपने अहिंसक रूप में प्रभावी रूप से जीवन्त है और इस क्षेत्र की हाथी कॉरीडोर, व्याघ्र योजना जैसी अन्य परियोजनाओं पर भी मुखर है। यह आंदोलन एक गहरे अध्ययन, अवलोकन और विश्लेषण का हकदार है। इस आंदोलन को समझने से नये आंदोलनों की रणनीति और संरचना गढ़ने में काफी मदद मिल सकती है।

सालाना संकल्प सभा टुटुआपानी में शामिल होकर लौटने के बाद यह सब कहने का मन हुआ। इस आंदोलन से अनजान कई लोगों के लिए तो यह अवश्य ही उपयोगी होगा।

-मंथन

'Sarvodaya Jagat' Hindi Fortnightly
Registered under RNI No. 35495/78, Postal Registration No. VSI-(E) 04, Valid upto 31 December 2023
Issued by S.S.P.O. Varanasi (East Division)

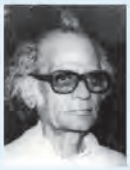

मुकुट बिहारी सरोज की कविताएं

प्रभुता के घर जन्मे

प्रभुता के घर जन्मे समारोह ने पाले हैं,
इनके ग्रह मुँह में चाँदी के चम्मच वाले हैं।
उद्घाटन में दिन काटे, रातें अख़बारों में,
ये शुमार होकर ही मानेंगे अवतारों में।

ये तो बड़ी कृपा है,
जो ये दिखते भर इन्सान हैं।
इन्हें प्रणाम करो ये बड़े महान हैं।

दंतकथाओं के उद्गम का पानी रखते हैं,
पूँजीवादी तन में मन भूदानी रखते हैं।
होगा एक तुम्हारा इनके लाख-लाख चेहरे,
इनको क्या नामुमकिन है ये जादूगर ठहरे।

इनके जितने भी मकान थे,
वे सब आज दुकान हैं।
इन्हें प्रणाम करो ये बड़े महान हैं।

ये जो कहें प्रमाण करें जो कुछ प्रतिमान बने,
इनने जब जब चाहा,
तब-तब नए विधान बने।
कोई क्या सीमा नापे इनके अधिकारों की,
ये खुद जन्मपत्रियाँ लिखते हैं सरकारों की।

तुम होगे सामान्य,
यहाँ तो पैदाइशी प्रधान हैं।
इन्हें प्रणाम करो ये बड़े महान हैं।

एक ओर पर्दों के नाटक

एक ओर पर्दों के नाटक,
एक ओर नंगे।
राम करे दर्शक दीर्घा तक,
आ न जाएँ दंगे।
अव्वल मंच बनाया ऊँचा,
जनता नीची है।
उस पर वर्ग-वर्ग में,
अंतर रेखा खींची है।
समुचित नहीं प्रकाश व्यवस्था,
अजब अंधेरा है।
उस पर सूत्रधार को,
खलनायक ने घेरा है।

पात्रों की सज्जा क्या कहिए,
जैसे भिखमँगे।
राम करे दर्शक दीर्घा तक,
आ न जाएँ दंगे।

नामकरण कुछ और खेल का,
खेल रहे दूजा।
प्रतिभा करती गई दिखाई,
लक्ष्मी की पूजा।
अकुशल, असंबद्ध निर्देशन,
दृश्य सभी फीके।
स्वयं कथानक कहता है,
अब क्या होगा जी के।

संवादों के स्वर विकलांगी,
कामी बेढंगे।
राम करे दर्शक दीर्घा तक
आ न जाएँ दंगे।

मध्यांतर पर मध्यांतर है,
कोई गीत नहीं।
देश काल की सीमाओं को,
पाया जीत नहीं।
रंगमंच के आदर्शों की,
यह कैसी दुविधा।
उद्देश्यों के नाम न हो पाए,
कोई सुविधा।

जन गण मन की जगह अंत में,
गाया हर गंगे।
राम करे दर्शक दीर्घा तक,
आ न जाएँ दंगे।

रात भर पानी बरसता

रात भर पानी बरसता और सारे दिन अंगारे,
अब तुम्हीं बोलो कि कोई जिंदगी कैसे गुज़ारे!

आदमी ऐसा नहीं है आज कोई,
साँस हो जिसने न पानी में भिंगोई।
दर्द सबके पाँव में रहने लगा है,
ख़ास दुश्मन गाँव में रहने लगा है।
द्वार से आँगन अलहदा हो रहे हैं,
चढ़ गया है दिन मगर सब सो रहे हैं।

अब तुम्हीं बोलो कि फिर
आवाज़ पहली कौन मारे,
कौन इस वातावरण की
बंद पलकों को उघारे?

बेवजह सब लोग भागे जा रहे हैं,
देखने में खूब आगे जा रहे हैं।
किंतु मैले हैं सभी अंतःकरण से,
मूलतः बदले हुए हैं आचरण से।
रह गए हैं बात वाले लोग थोड़े,
और अब तूफ़ान का मुँह कौन मोड़े?

नाव डाँवाडोल है ऐसी कि कोई क्या उबारे,
जब डुबाने पर तुले ही हो किनारे पर किनारे।

है अनादर की अवस्था में पसीना,
इसलिए गढ़ता नहीं कोई नगीना।
जान तो है, एक उस पर लाख ग़म हैं,
इसलिए किस्में बहुत हैं, नाम कम हैं।

एक उत्तर के लिए हल हो रहे हैं ढेर सारे,
और जिनके पास हल हैं,
बंद हैं उनके किवारे।

हो गया है हर इकाई का विभाजन

हो गया है हर इकाई का विभाजन,
राम जाने गिनतियाँ कैसे बढ़ेंगी?

अंक अपने आप में पूरा नहीं है,
इसलिए कैसे दहाई को पुकारे!
मान, अवमूल्यित हुआ है सैकड़ों का,
कौन इस गिरती व्यवस्था को सुधारे?

जोड़-बाकी एक से दिखने लगे हैं,
राम जाने पीढियां कैसे पढ़ेंगी!

शेष जिसमें कुछ नहीं, ऐसी इबारत,
ग्रन्थ के आकार में आने लगी है।
और मज़बूरी, बिना हासिल किए कुछ,
साधनों का कीर्तन गाने लगी है।

माँग का मुद्रण नहीं करती मशीनें,
राम जाने क़ीमतें कितनीं चढेंगी!

भूल बैठे हैं, गणित, व्यवहार का हम,
और बिल्कुल भिन्न होते जा रहे हैं।
मूलधन इतना गँवाया है कि खुद से,
खुद-ब-खुद ही खिन्न होते जा रहे हैं।

भाग दें तो भी बड़ी मुश्किल रहेगी,
राम जाने सर्जनाएँ क्या गढेंगी! ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए प्रकाशक अरविन्द अंजुम द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार